संस्थापक
योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

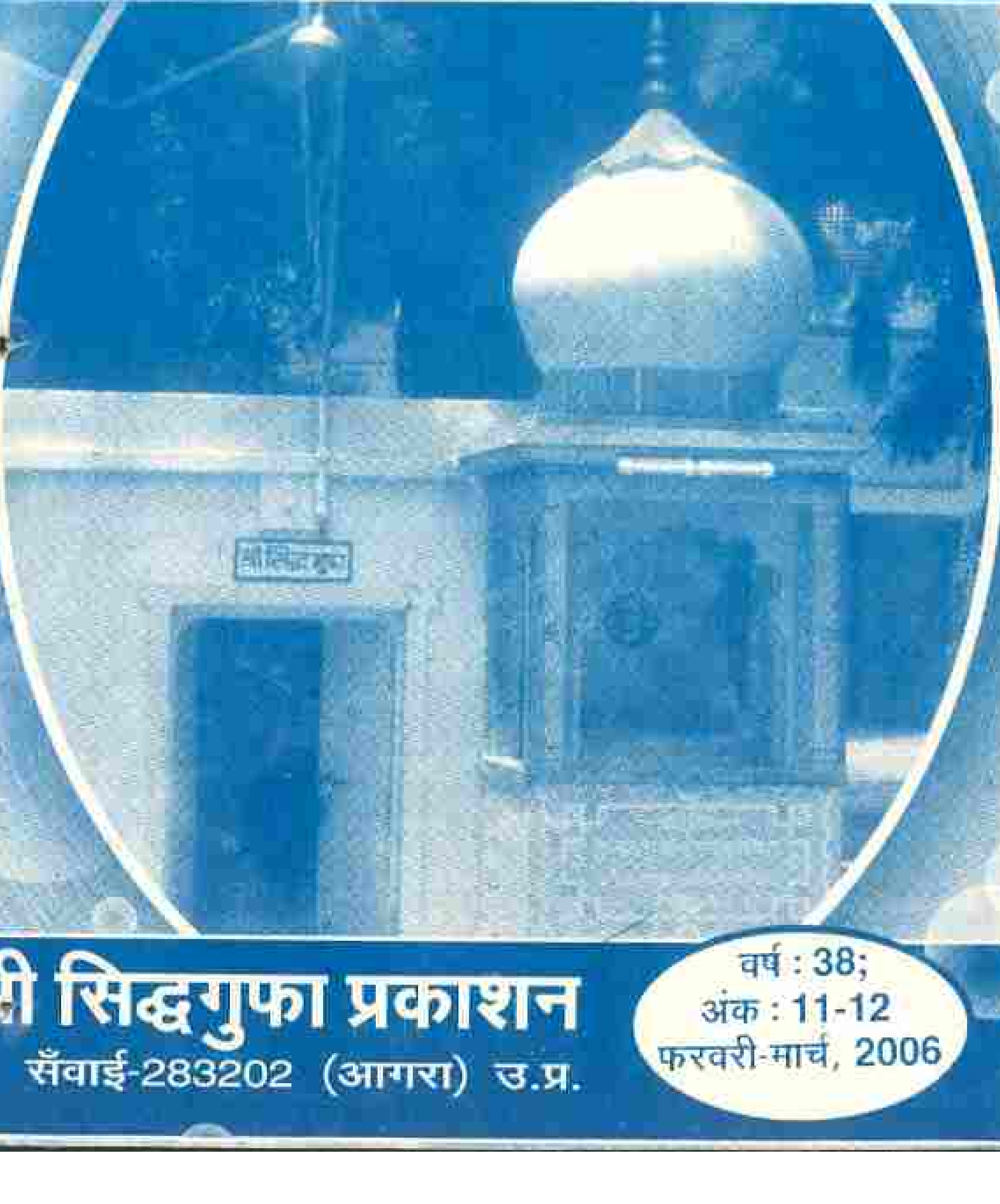

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 38;
अंक : 11-12
फरवरी-मार्च, 2006

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में...

- अमृत कण 2
- योग साधक के लिये अनुपालनीय नियम (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 11
- आयातु सुस्वागतमस्तु.......—पं. द्वारका प्रसाद शर्मा (लखनऊ) 13
- भजन —भूपेन्द्र अंकुश (जलेसर) 14
- विहाय कामान् सर्वान् 15
- गुरु-भक्ति का चमत्कार —वेदव्रत द्विवेदी (उमापुर) 18
- गुरुवर मुझपे दया कर देना —दिशा, स्वाती, श्वेता (झाँसी) 20
- चिज्जड ग्रन्थि खोलने के उपाय —जनक कुलश्रेष्ठ (ग्वालियर) ... 21
- योगिनी बहिन सुशीला देवी का दिव्य प्रयाण —सम्पादक 25
- भाव प्रसून —गोरीलाल (कासगंज) 27
- श्रीप्रभु कृपा लीला —जगदीश राय बंसल 'अधम' 28
- बड़े भाग्य मानुष तन पाया —रामेश्वर खण्डेलवाल (गंगापुरसिटी) . 30
- गंगापुर सिटी में सप्त दिवसीय ध्यान योग शिविर —संतोष शर्मा (गंगापुर) 34
- "विपश्यना ध्यान विधि" —डा. जे. पी. शर्मा, (पौंटा साहिब) 37

मुद्रण व्यवस्था बाधित होने से फरवरी माह का अंक प्रकाशित नहीं हो सका। अतः फरवरी-मार्च का संयुक्तांक पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। —*व्यवस्थापक*

एक प्रति	:	रु. 09-00
वार्षिक शुल्क	:	रु. 100-00
द्विवार्षिक	:	रु. 190-00
आजीवन	:	रु. 800-00

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 38 अंक 11-12	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम् मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः। तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्, कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।	फरवरी-मार्च 2006

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः
स्वस्ति नः पू सा विश्ववेदाः।
स्वस्तिनस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमिः
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।

यजुर्वेद २५/१६

अर्थात्

परम ऐश्वर्यवान एवं यशस्वी परमेश्वर हमारा कल्याण करे। विश्व का पोषण करने वाला सर्वज्ञ परमेश्वर हमारा कल्याण करे। परम तेजवान एवं समस्त दुःखों का नाश करने वाला परमेश्वर हमारा कल्याण करे। सब पदार्थों का स्वामी और ज्ञान का भंडार परमेश्वर हमारा कल्याण करे।

अमृतकण

यावत्स्थो ह्ययं देहो यावन्मृत्युश्च दूरतः।
तावदात्महितं कुर्यात् प्राणान्ते किं करिष्यति।।

(चाणक्य)

जब तक शरीर निरोग व स्वस्थ है और मृत्यु दूर है तब तक अपने आत्म कल्याण का उपाय कर लेना चाहिये। क्योंकि मृत्यु हो जाने पर कोई कुछ नहीं कर सकता।

✿ ✿ ✿

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।।

(श्रीमद्भगवद् गीता ६/६)

जिस जीवात्मा द्वारा मन और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है, उस जीवात्मा का तो वह स्वयं ही मित्र है जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियों सहित शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिए वह स्वयं ही शत्रु जैसा व्यवहार करता है।

✿ ✿ ✿

शतं वोऽम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।
अधाशत क्रत्वो यूयमिमं मेऽअंगदकृत।।

(यजुर्वेद)

मनुष्यों को चाहिये कि वे उचित पथ्य, आहार और नियमों का विधिवत्पालन कर शरीर को रोग रहित रखें अर्थात् स्वास्थ्य की रक्षा करें, क्योंकि स्वस्थ रहे बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष–इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

✿ ✿ ✿

नैकः सुखी न सर्वत्र विश्रब्धो न च शंकितः।
नोद्यमे विरमेत्क्वपि हेतावीर्ष्येत्फले न तु।

(भावप्रकाश ५/२५८)

अकेले सुख का भोग न करके, दूसरे को सुख भोग कराते हुए स्वयं सुख भोगना चाहिये। सबके ऊपर विश्वास या संदेह न करके सोच समझकर उचित व्यवहार करना चाहिये। उद्योग करना न छोड़े और दूसरे की उन्नति और सम्पन्नता से ईर्ष्या न करें।

✿ ✿ ✿

विशेष लेख

योग साधक के लिये अनुपालनीय नियम

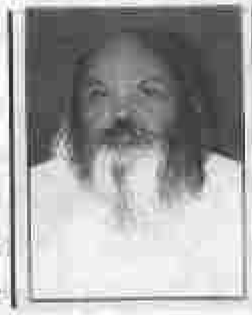

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

देखो ! एक योगी जो अपने को उत्थान की ओर ले जाना चाहता है उसके लिये कुछ आवश्यक नियम भी होते हैं। उन नियमों पर चलकर ही वह अपना आध्यात्मिक विकास कर सकता है। काल चक्र, जग चक्र और युग चक्र को एक साथ घुमाने वाले मेरे तुम्हारे और सब प्राणियों के आत्मा श्रीकृष्णचन्द्र ने गीता में उन नियमों का संकेत दिया है। मैं अपने हर योग प्रचार कार्यक्रम में भगवान के इन वचनों को दोहराया करता हूँ। वे वचन हैं—

"विविक्त सेवी लाघ्वाशी यतवाक्कायमान सः
ध्यान योग परो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।
अहंकार बलं दर्पं काम क्रोधं परिग्रहम
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।।"

अर्थात् भगवान ने साधक के लिये पहली बात कही है 'विविक्त सेवी' एकान्त में रहे। एकान्त में किसको रहना चाहिए ? एकान्त में उसे रहना चाहिये जिसका ध्यान लगता हो, जिसकी अन्तर्मुखी वृत्ति बन गई हो। सिद्धान्त की बात एक और भी है—

'वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम्,
गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
'अकुत्सिते कर्मणि य प्रवृत्ते
निवृत्त रागस्य गृहं तपोवनम्।।

अर्थात् जो रागी लोग हैं या विषयी व्यक्ति है, उनको वन में भी विषय लग जाता है। किन्तु जो निन्दित कर्म में प्रवृत नहीं होता, अपनी पाँचों इन्द्रियों को संयमित रखता है तथा जिसका विषयों के प्रति राग छूट गया है उसके लिये घर ही तपोवन है। इसीलिये जो विषयी लोग हैं, उनको समाज में ही रहना चाहिये।

'लघ्वाशी' हल्का आहार करना चाहिये ताकि आलस्य निद्रा न सताये। **'यतवाक्कायमान सः'** योगी को अपनी वाणी पर नियन्त्रण रखना चाहिये। कम बोलना चाहिये, सत्य बोला

चाहिये। 'यतकाय' शरीर पर नियन्त्रण हो, प्रत्येक चेष्टा युक्त व संयमित हो **'सतमानसः'** अपने मन पर नियन्त्रण रखे। योगी ध्यान करता–करता ऊँची स्थिति को पा जाता है। उस समय यदि मन पर नियन्त्रण नहीं है तो वह किसी का भला करेगा, किसी का बुरा करेगा। मैं तुम्हें इस से सम्बन्धित एक घटना सुनाता हूँ, अमृतसर में दो पढ़ने वाले लड़के थे। उनमें से एक श्री प्रभुजी के चरणों मे आ गया था। दीक्षा ले ली।योगीध्यानी बन गया। दूसरा यूँ ही भटकता था, प्रभुजी का निन्दक ही था। उसने उस ध्यानी लड़के की पुस्तकों का ट्रंक चुरा लिया। समझाने पर भी वह अपनी गलती को नहीं मानता था। ध्यानी लड़का जब ध्यान में बैठता था तो वह देखता था कि उसका तीसरा नेत्र खुल गया है और उस लड़के पर क्रोध की दृष्टि जाती है। उसने ध्यान से उठकर के यह बात श्री प्रभु जी को बताई। प्रभु जी ने कहा–तुम आठ दिन तक ध्यान में नहीं बैठना नहीं तो उसका अनिष्ट हो जायेगा।

वह आठ दिन तक ध्यान में नहीं बैठा। आठवें दिन उसने प्रभु जी से ध्यान में बैठने के लिये पूछा–प्रभुजी अन्य व्यक्तियों के साथ बातचीत में व्यस्त थे। उन्होंने सरल भाव से कहा–बैठ जाओ। वह लड़का ध्यान में बैठ गया। कई दिनों का ध्यान प्रवाह रुका हुआ था। मन एकाग्र होते ही वह लड़का सामने दिखाई दिया। बड़ी भद्दी हरकतें करता हुआ दिखाई दिया। इससे इसका क्रोध और बढ़ गया फिर इसने देखा कि उसके तीसरे नेत्र से एक चिन्गारी सी निकली और उस लड़के पर पड़ गई। यह दृश्य दिखाई देने के बाद वह लड़का ध्यान से उठ गया और श्री प्रभु जी के पास जाकर कहने लगा प्रभु जी ! आज तो इस प्रकार से हो गया। प्रभु जी कहने लगे "बस, ठीक है, हम तुम्हें शक्ति देते रहे और तुम दुनियाँ का अनिष्ट करते रहो। हमने तुमसे कहा था कि ध्यान में नहीं बैठना, फिर क्यों बैठे ?" उस बिचारे ने पूछ तो लिया था। खैर ! हम लोग उस लड़के को देखने के लिये गये।

वहाँ जाकर देखा वह लड़का पागल हो गया था उसका दिमाग खराब हो गया। उसने अपनी सारी पुस्तकों को आग लगा दी थी, फिर उसने अपने कपड़े भी जला दिये, अपने कमरे मे भी आग लगाने जा रहा था। किन्तु आस पड़ोसियों ने उसे पकड़ लिया। वे लोग उसे पागल खाने ले जा रहे थे। हमने उसे ले जाने नहीं दिया। उसे नेति कराई, नाक से दूध पिलाया सिर को मला, मालिश आदि कराई, वह थोड़ा ठीक हो गया। इसलिये भगवान का आदेश है कि मन पर कन्ट्रोल रखे। मन से भी किसी के अहित का चिन्तन न करें। **'ध्यान योग परो नित्यम्'** नित्य ध्यानयोग का अभ्यास करो। मैं तुम्हें रोज–रोज कहता हूँ प्रातः ५ बजे से ७ बजे तक अपने ध्यानाभ्यास में अवश्य बैठा करो। रात्रि को भी सोने से

पूर्व कुछ देर बैठ कर मंत्र जाप करना चाहिये। फिर मन्त्र जाप करते-करते ही शवासन में लेट जाना चाहिये। शवासन को श्री प्रभु जी अमृतासन भी कहते थे। शवासन में लेट कर अभ्यास करने के लिए श्री प्रभु जी स्त्रियों को भी कहा करते थे। वैसे तो आमतौर पर रात्रि में बाँये करवट सोना चाहिये। क्योंकि, रात्रि में वात कफ की अधिकता रहती है इसलिये दाँये स्वर-पिंगला को चलाना चाहिये। किन्तु साधना की दृष्टि से शवासन में ही लेट कर अभ्यास करना चाहिये। शवासन में सुषुम्ना चलती है। जब सुषुम्ना चलने लगे-अर्थात् जब दोनों नासिका से श्वास बराबर चल रहा हो तो कुण्डलिनी में प्रबोध होता है, मन की एकाग्रता बनती है। इस प्रकार शवासन से लेटने पर वृत्ति एकाग्र रहेगी, अच्छे अनुभव होंगे, भजन चलता रहेगा। ऐसी स्थिति के लिये ही कहा गया है-

'सोना तो सबसे भला जो कोई जाने सोया
अन्तर लौ लागी रहे सहज ही सुमिरन होया।'

ध्यानाभ्यास से जो अपने पापों का क्षय कर देता है अथवा गुरुदेव की अनुकम्पा को प्राप्त कर लेता है, वह व्यक्ति प्राक्तन् घोर कर्म विपाक को शरीर रहते रहते भोग करके अन्तिम काल में शुद्ध हो जाता है उसके प्राण निकलने में कोई कष्ट नहीं होता। मैं अपने ऐसे बहुत से ध्यानी बच्चों का उदाहरण देता ही रहता हूँ। ध्यान के प्रभाव से, तपके प्रभाव से, स्वाध्याय के प्रभाव से उनको अन्तिम समय में कोई कष्ट नहीं हुआ और वे सद्‌गति भाजन बन गये। **अस्तु-वैराग्यम् समुपाश्रितः'** साधक को चाहिये कि वे अपने मन में वैराग्य को धारण करे। संसार की अनित्यता का बार-बार विचार करना चाहिये और किसी वस्तु से, व्यक्ति से राग नहीं करना चाहिये। श्री प्रभु जी कहा करते थे- जो तुम्हारा मन ले ले, वही तुम्हारा वैरी है। वह तुम्हारे मन की शक्ति को खींचता रहेगा और जैसा वह है वैसे ही तुम्हें बना देगा। इसलिये साधक को सावधान रहना चाहिये। किसी में आसक्ति नहीं बढ़ानी चाहिये।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्: साधक अहंकार को छोड़ दे। मनुष्य में कई प्रकार का अहंकार होता है जैसे कर्म करने का अहंकार, बल का अहंकार, धन का अहंकार विद्या का अहंकार आदि-आदि सब अनिष्ट अहंकार के कारण होता है। इसलिये बल-किसी भी प्रकार का बल हो, उसका दुरुपयोग न करें। **दर्प**-मिथ्याभिमान न करे। **कामम्**-अनेक प्रकार की कामनायें तृष्णायें होती हैं, उनका त्याग करे। **क्रोधम्**-किसी पर क्रोध न करें। क्रोध करने से आन्तरिक शक्ति भी क्षीण होती है और शारीरिक शक्ति भी क्षीण होती है। **परिग्रहम्**-आवश्यकता से अधिक वस्तु का संग्रह न करें। साधक जीवनोपयोगी कम से कम वस्तु अपने पास रखे। इसलिये परिग्रह न करे। **निर्ममः**-अर्थात् ममता रहित बने। किसी

वस्तु या व्यक्ति में आसक्ति न रखे। यदि साधक भगवान के उपर्युक्त आदेश को मानकर चलता है तो वह परम शांति को पा जाता है और ब्रह्मत्व को पा जाता है अर्थात् ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

भगवान पतंजलि देव ने चित्त को प्रसन्न रखने का उपाय योग दर्शन में बताया है। यदि ये चार बातें साधक अपने अन्दर कायम कर लें, तो उसकी समाधि में विघ्न नहीं पड़ता चित्त प्रफुल्लित रहता है। वे चार साधना हैं–

'मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुखदुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम्'

इसका अर्थ यह है साधक सुखी व्यक्ति से मैत्री की भावना, सुहृदता का व्यवहार रखे। दुःखी प्राणियों के प्रति करुणा का भाव रखे। दया दुखियों पर करे जो पुण्यात्मा है साधु हैं, उनको देखकर मन में आनन्द का अनुभव करें और जो दुराचारी या पापी व्यक्ति हैं, उनके प्रति उदासीन भाव रखें। इस प्रकार के भाव लाने से योगी के मन में कोई विक्षेप नहीं आता है, उसका चित्त प्रसन्न रहता है। मैं कभी–कभी तुम्हें इस बात का संकेत कर दिया करता हूँ कि तुम्हें अपनी दिनचर्या किस प्रकार की रखनी चाहिये। देखो ! साधक को 'युक्ताहार विचार' का सिद्धान्त हमेशा अपने सामने रखना चाहिये। रात्रि को मंत्र जाप करते–करते दस बजे तक सो जाना चाहिये। सुबह ठीक चार बजे उठ जाना चाहिये। उठने के बाद शौच जाना चाहिये। यदि कोष्टबद्धता रहती है, तो नियमित गर्म पानी में नीबू व नमक डालकर पीना चाहिये। शौच से निवृत्त होकर दातूनादि से दाँत व जीभ ठीक प्रकार से साफ करनी चाहिये। नहाने के लिये ठण्डे पानी का प्रयोग उत्तम रहता है। इससे रोमकूप खुल जाते हैं तत्पश्चात् खद्दर के खुरदरे अंगोछे से शरीर को रगड़–रगड़ कर पोंछना चाहिये। इसके बाद थोड़ा जीवन तत्व साधन अवश्य करना चाहिये। पाँच बजे तक इन कार्यों से निवृत्त होकर आनन्दकन्द श्री प्रभुजी की आरती करें। उसके पश्चात् मंत्र जाप व ध्यान के लिये बैठ जायें। मंत्र को श्वांस–प्रश्वांस से जपना चाहिये। यदि इसमें नींद आने लगे तो जीभ से बोल–बोल कर भी जप कर सकते हो। मेरुदण्ड को सीधा रखो ब्रह्मचर्य पूर्वक छः महीने तक शरीर सीधा रख कर अभ्यास करोगे तो ध्यान लगेगा ही लगेगा। पहले हमारा नियम था जो छः महीने तक तीन घण्टे बैठ लेता था, उसे ही दीक्षा देते थे और छः महीने तक जो छः छः घण्टे बैठता था, तब शक्तिपात करते थे। अब भीड़ भाड़ के कारण यह नियम चल नहीं पाता है। जीवन तत्व एवं योगासन करने से धातु सारे शरीर में व्याप्त हो जाता है। जिसमें साधक ओज तेज से भर जाता है। इसलिये नियमित योगासन अथवा जीवन तत्व आवश्यक है। साधना के विषय में पतंजलि देव का सूत्र याद रखना चाहिये–

'स तु दीर्घकाल नैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़ भूमिः।

अर्थात् साधना को लम्बे समय तक करते रहना चाहिये। साल छः महीने में ही उकताना नहीं चाहिये। **नैरन्तर्य**–निरन्तर लगाकर अर्थात् प्रतिदिन करें। **'सत्कारासेवितो'** सत्कार पूर्वक, आदि पूर्वक करें। यही साधन तुम्हें दुःखों से छुड़ा देगा, यही मोक्ष प्रदान करेगा, ऐसी भावना रखते हुये साधना करनी चाहिये तब साधना दृढ़ बनती है। एक और भी बात है, वह है–**तीव्र संवेगानामासन्नः** जो गाढ़ी लगन के साथ साधना करते हैं वह अपने लक्ष्य को जल्दी पाते हैं और जो साधना में शिथिलता वर्तते हैं, उन्हें देर में सफलता मिलती है। स्वल्पाहार करोगे, तप करोगे अर्थात् सर्दी–गर्मी, भूख प्यास सहन करते हुये साधना करोगे, तो श्री प्रभु जी की कृपा से ध्यान लगने लगेगा। मैंने तुम्हें बताया था कि ध्यानियों के प्रारब्ध बदल जाया करते हैं। यदि गुरुदेव की कृपा से ध्यान लगता है तो ध्यानियों का भी रजिस्ट्रेशन हो जाता है। अर्थात् मनुष्य जन्म मिलेगा अथवा स्वर्गादि लोकों में जायेगा। निम्न योनियों में नहीं जा सकता। साधकों को एक डायरी रखनी चाहिये। प्रातः संकल्प करो। आज दिन भर में मैं किसी को दुःख नहीं दूँगा। अपनी चेष्टाओं और मन पर नियन्त्रण रखूँगा आदि। फिर शाम को सोने से पहले अपनी पूरी दिनचर्या को देखो, आज कहीं गलत काम तो नहीं हो गया, साधना में कितना मन लगा इत्यादि बातों पर विचार कर अपने दुर्गुणों को दूर करने का प्रयास करो।

मेरे बच्चे अधिकांश घर–गृहस्थी वाले हैं। मैं तो अपने हर गृहस्थी बच्चे को एक बात जोर देकर कहा करता हूँ कि पति–पत्नी में परस्पर प्रेम रहना चाहिये। दोनों को एक प्राण होकर रहना चाहिये, इससे साधना में किसी प्रकार का विघ्न नहीं आता। मनु महाराज का वचन है–

संतुष्टो भार्यया भर्त्ता, भार्या भर्त्ता तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं सर्वम् तद् रोचते गृहम्।।

अर्थात् जिस परिवार में पत्नी से पति खुश रहता है और पति से पत्नी प्रसन्न रहती है, तो वहाँ सब प्रकार से सुख सम्पत्ति का वास रहता है, लक्ष्मी बरसती है और किसी प्रकार की बीमारी नहीं आती तथा उत्तम संतान की प्राप्ति होती है। किन्तु, घर में यदि रोज कलह रहता है, द्वन्द्व मचता है तो निश्चित जान लो कि दरिद्रता आयेगी, बीमारियाँ बढ़ेंगी और सन्तान भी अच्छी नहीं होगी। इसलिये हर गृहस्थी साधक को परस्पर प्रेम से रहना चाहिये।

योग साधकों को ध्यानाभ्यास के साथ–साथ यम नियमादि का भी पूरा–पूरा पालन करना चाहिये। उन्हें यह भी नहीं सोचना चाहिये कि पहले हम यम-नियम का ही पालन

कर लेंगे, फिर ध्यानाभ्यास में बैठेंगे। यम नियमादि जो योग के पाँच बहिरंग साधन हैं, उनमें आँख बन्द करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनमें अपने व्यवहार में यम-नियमादि को अपनाना पड़ता है। मैंने तुम्हें कई बार बताया है कि जो यम-नियमों का पालन नहीं करता और जिसने गुरुदेव के थपेड़े खाकर साधना नहीं की, उसका पतन हो जाया करता है। योग के एक अंग का ही यदि ठीक प्रकार से पालन हो जाये, तो यह एक अंग ही हमें समाधि द्वार तक पहुँचा देता है। यम नियमों में सर्वप्रथम स्थान अहिंसा का है। योगी को **'सर्वभूत हितेरताः'** की भावना से युक्त होकर मन, वचन एवं कर्म से किसी भी प्राणी को पीड़ा नहीं पहुँचानी चाहिये। वस्तुतः अहिंसा की पूरी-पूरी प्रतिष्ठा तो योगी को समाधि मिल जाने पर ही होती है। जब तक योगी **'सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि'** की स्थिति में नहीं पहुँच जाता अथवा **'शुनि चैव श्वपाके च पण्डितः समदर्शिनः'** के सिद्धान्तानुसार सब प्राणियों में आत्मदर्शन नहीं कर लेता, तब तक कोई भी पूर्ण रूप में अहिंसक नहीं हो पाता।

अहिंसा की प्रतिष्ठा हो जाने पर, हिंसक प्राणियों में भी अहिंसा भाव का उदय हो जाता है। मुझे एक घटना याद आई है। एक बार आनन्दकन्द श्री प्रभुजी अपने कुछ शिष्यों के साथ ऋषिकेश से आगे ब्रह्मपुरी के जंगल में घूमने गये। श्री गुल्खराज जी महाराज भी उनके साथ थे, उन दिनों उनकी तुरीय स्थिति बनी हुई थी। घूमते-घूमते अचानक एक बाघ निकल आया। सब लोग डरने लगे। श्रीप्रभु जी ने अभयदान दिया। सभी शान्त खड़े रहे। ज्यों ही वह बाघ श्री गुल्खराज जी के समीप आया, वह पूँछ हिलाने लगा।

श्री गुल्खराज जी ने उसके सिर पर हाथ फेर कर प्यार किया। थोड़ी देर में वह अपने आप दूर चला गया। इसी का नाम है **'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः'**।

अहिंसा के बाद सत्य दूसरा यम है। इस व्रत का भी पालन करना बहुत आवश्यक है जो व्यक्ति पूर्णतया सत्यवादी हो जाता है, उसकी वाणी में ताकत आ जाती है। योगदर्शन में सत्य व्रत पालने करने का फल बताया है—**"सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्"** सत्य प्रतिष्ठा से योगी की वाणी क्रियाफलवती हो जाती है। **'अमोघाऽस्यवाक्भवति'** की स्थिति आ जाती है। वह अमोघ वाणी वाला बन जाता है और धीरे-धीरे वह ऋतम्भरा प्रज्ञा तक भी पहुँच जाता है। मैं तुम्हें अपने एक गुरुभाई का उदाहरण देता हूँ। (यह घटना गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज की अपनी आप बीती घटना है। गुरुदेव जी ऐसे दृष्टांत समझाते हुये अपनी ही घटनायें बताते थे किन्तु अपना नाम नहीं आने देते थे) वह गुरु भाई अपने मुख से जो कह दिया करते थे, वह पूर्णतया सत्य होता था। सत्य बोलने का यह पवित्र व्रत उसे बाल्यकाल से ही, उनके पिता के द्वारा दृढ़ बना दिया गया था। एक बार वे योग प्रचार करते हुये रोहतक जिला में किसी गाँव में गये। वहाँ पर एक ब्राह्मण बालक

को भूतोन्माद की बीमारी लगी हुई थी। उसका इलाज उन्होंने अपनी मानसिक शक्ति से किया और उसे आराम हो गया। इसके फलस्वरूप इस गाँव में उनके सत्संग का काफी प्रचार हो गया। उस गाँव में वह महात्मा दस पन्द्रह दिन तक रहे। इसके बाद उनका कार्यक्रम किसी दूसरे स्थान में निश्चित हो चुका था।

निर्धारित दिन में उन्हें दिन की गाड़ी पकड़नी थी। स्टेशन वहाँ से पाँच–छः किलोमीटर दूर था। महात्मा जी गाड़ी पकड़ने के लिये चलने वाले थे कि अचानक वर्षा शुरू हो गई ओले पड़ने लगे। सत्संगियों ने कहा–महाराज ! ऐसे में जाना तो अत्यन्त कठिन है। आप आज का कार्यक्रम स्थगित कर दें। माघ का महीना था। महात्मा जी सत्यवादी थे। अतः अपने वचन की रक्षा के लिये ऐसी स्थिति में भी चलने को तैयार हो गये। सवारी भी कोई जा नहीं सकती थी। महात्मा जी ने अपने सत्संगियों से कहा कि तुम हमारा बिस्तर और शेष सामान बाद में पहुँचा देना। अपने वचन का पालन करने के लिये वर्षा में ही एक छाता लेकर वे चल पड़े। सभी गाँव वालों को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि महात्मा जी आधा फलाँग भी नहीं गये थे कि वर्षा रुक गई। बादल हट गये आकाश स्वच्छ हो गया। सत्संगी भी उनके पीछे सामान लेकर चल पड़े। उनके सत्य संकल्प के कारण वे ठीक समयपर पहुँचें और गाड़ी पकड़ ली। वह महात्मा जी की सत्य संकल्पता का ही परिणाम था। सत्य वादन के एक साल के अनवरत अभ्यास करने से योगी को वाक्‌सिद्धि स्वतः प्राप्त हो जाती है। किन्तु इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि कटु सत्य भी न बोले। कटु सत्य में अनेक प्रकार की हानियाँ निहित रहा करती हैं। सत्यवादी व्यक्ति यदि साथ में ध्यान योगी भी है तो उसके लिये बुद्धि का आलोक खुल जाता है, उसे स्फुट प्रज्ञा प्राप्त हो जाती है। साधक के लिये ब्रह्मचर्य व्रत का पालन तो आवश्यक है ही–

'ब्रह्मचारी विनयेषु शक्तिमाधातुम् समर्थो भवति'।

ब्रह्मचारी अपने शिष्यों पर शक्तिपात कर सकता है अणिमादि सिद्धियाँ ब्रह्मचारी को सहज ही मिल जाती हैं। इसलिये साधक को अपनी इन्द्रियों पर निग्रह रखना चाहिये, यह बहुत बड़ा तप है। साधक को अस्तेय व्रत का भी पालन करना चाहिये। 'अस्तेय' का अर्थ है मन से चोरी का भाव निकाल देना। इस भाव की प्रतिष्ठा हो जाने पर **'अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्'** अर्थात् योगी के सम्मुख सब रतन अपने आप उपस्थित हो जाया करते हैं। अपरिग्रह का पालन भी जरूरी है। अपनी धन संपत्ति में आसक्ति का न रखना अपरिग्रह कहलाता है। अपरिग्रह से संतोष मिलता है। इस व्रत के स्थैर्य से **'जन्मकथान्त-संबोधः'** आगे पीछे जन्म की बातें याद रहने वाली हैं।

जिला मैनपुरी में हमारा एक शिष्य रघुनन्दन लाल शास्त्री है। उनकी एक लड़की है। वह पिछले जन्म में रेल के नीचे कट कर मर गई थी। पिछले जन्म में मेहतर कुल में उसका जन्म हुआ था। उसके पति और घर वाले उसे बहुत मारते पीटते थे। इसलिये एक दिन उस लड़की ने आत्महत्या कर ली। इस लड़की को इस जन्म में भी पूर्व जन्म की सारी बातें याद हैं। लोक में भी ऐसी बातें कभी–कभी घट जाती है। किन्तु यह योग की बात नहीं है। इस प्रकार से ये पाँच यम हैं। इसमें से यदि एक की भी साधना हो गई तो साधक मुक्ति द्वार तक पहुँच सकता है। यमों के साथ–साथ नियमों का भी पालन करना चाहिये। पहला नियम शौच है। यह दो प्रकार का होता है एक बाहर का दूसरा भीतर का। शरीर वस्त्र आदि को स्वच्छ व शुद्ध रखना बाह्य शौच है। शुभ भावों से अन्तःकरण को पवित्र रखना भीतरी शुद्धि है। अन्तःकरण शुद्धि के बिना, पर दर्शन नहीं हो सकता। संतोष का भी अपना महत्व है। इसी प्रकार से तप और स्वाध्याय भी क्रिया योग के अन्तर्गत आते हैं–ये दोनों अन्तःकरण को पवित्र बनाने वाले उत्तम साधन हैं। **'तपसा चीयते ब्रह्म'** तप के द्वारा ही ब्रह्म दर्शन होता है। स्वाध्याय से इष्ट देव सिद्धि एवं ऋषियों के दर्शन सम्भव होते हैं। इस प्रकार से तप व स्वाध्याय को बढ़ाता हुआ साधक ईश्वर प्रणिधान की ओर निकल जाता है। सतोगुण के विकास होने पर ईश्वर प्रणिधान् अर्थात् आत्म समर्पण होता है।

साधक को अपना आचार विचार ठीक रखना चाहिये। **'आचारहीनं न पुनन्तिवेदाः'** अर्थात् आचारहीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। आहार विहार योगी का युक्त होना चाहिये। गीता में भगवान का आदेश है–

'युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

अधिक खाने अथवा बिल्कुल न खाने से योग सिद्ध नहीं होता। कर्मों के प्रति भी चेष्टा युक्त होना चाहिये। अनावश्यक चपलता ठीक नहीं होती। शरीर को चंचल रखने से मन का भी चंचल रहने का स्वभाव बढ़ जाता है। समय पर सोना, समय पर जागना उचित है। इस प्रकार से अपनी नियमानुवर्तिता का पालन करने से योग समस्त दुःखों का हरण करने वाला बन जाता है।

साधक को अपने आपको हर समय व्यस्त (निरत) रखना चाहिये। चलते–फिरते, उठते–बैठते गुरु मंत्र का जाप करते रहना चाहिये। जो ऐसा करेंगे, श्री प्रभु जी उनकी अवश्य सहायता करेंगे।

बार–बार आशीर्वाद।

***

● सम्पादकीय

हमारी सिद्धयोग-पत्रिका

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

सिद्धयोग क्या है ? वह योग जो सिद्ध महापुरुष के द्वारा सिद्धकृपा से संचालित होता हो सिद्धयोग कहलाता है। गीता के चौथे अध्याय के प्रारम्भ में ही आनन्दकन्द श्री कृष्ण चन्द्र जी ने अर्जुन को समझाते हुये कहा–"अर्जुन ! इस अव्यय योग को मैंने सर्वप्रथम सूर्य के प्रति कहा था। फिर सूर्य ने मनु को तथा मनु ने इक्ष्वाकु को इसका ज्ञान कराया था। समय के अन्तराल से बीच में बहुत काल तक इसका लोप हो गया था। उसी दिव्ययोग को अर्जुन, आज मैं तुझे बता रहा हूँ"। बीच में इसका लोप क्यों हो गया ? इसका एक कारण है। योग अध्यात्म विद्या है। अधिकारी शिष्य को ही इसका उपदेश दिया जाता है। जो अत्यन्त श्रद्धालु हो, गुरु भक्त हो, आस्तिक हो, यम–नियमों का पालन करने वाला सदाचरण युक्त हो–वही इसका अधिकारी होता है। यह केवल सुनने सुनाने का विषय नहीं है इसे तो सिद्ध गुरु शक्तिपात द्वारा शिष्य के भीतर प्रवेश कराता है परिणाम यह होता है शिष्य के तन–मन, बुद्धि सब प्रकाशित हो जाते हैं। भगवान् ने अर्जुन से कहा–'**दिव्यम् ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्**'।

"अर्जुन ! मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ जिससे तू मेरे योगैश्वर्य एवं आत्मशक्ति को देख पायेगा।" भगवान श्री कृष्ण चन्द्र अनादि सिद्ध हैं। जगत्गुरु है वे समय–समय पर भक्तों पर कृपा करते हैं इसी को सिद्धयोग कहा जाता है। सिद्धयोग में शिष्य के अन्दर अलौकिक शक्ति आ जाती है। दिव्य ज्ञान का स्वतः प्राकट्य होने लगता है। उसमें वर–शाप देने की सामर्थ्य आ जाती है। ऐसे में यदि शिष्य क्रोध–काम के वश में हो जाता है तो दूसरे का अनर्थ तो होता ही है उसका स्वयं का भी नुकसान होता है। धीरे–धीरे उसकी वह शक्ति अस्तंगमित हो जाती है। इसलिये गुरुदेव बहुत ही देखभाल कर ही शिष्य को शक्ति दिया करते हैं। इसीलिये अधिकारी की बात आती है। योग की जो भी परम्परा दीख रही है। सिद्धयोग की परम्परा से ही चलती है। भगवान् मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने योग्य शिष्यों को यह अमर धरोहर दी जो आज भी नाथ–सम्प्रदाय में प्रवाहमान है। शिवरूप महाप्रभु रामलाल ही महाराज ने आकर हिमालय की इस अमर–विद्या का प्रचार किया तत्पश्चात् गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज द्वारा शक्तिपात योग की परम्परा चलती रही है। आज भी लाखों शिष्य सिद्धयोग परम्परा से जुड़कर अमरत्व की ओर अग्रसर हो रहे हैं। शैव परम्परा के भी योग साधना के द्वारा निर्वाण पद की ओर अग्रसर गुफाओं कन्दराओं में योगीजन अभ्यासरत है।

इसी सिद्धयोग परम्परा के द्वारा योग विद्या का ज्ञान देने के लिये गुरुदेव ने आज से ३८ वर्ष पूर्व एक पत्रिका का सूत्रपात किया था जिसका नाम उन्होंने **सिद्धयोग** रखा। वही वटवृक्ष आज पुष्पित एवं पल्लवित हो रहा है। उपनिषदों में कहा गया है कि बलहीन व्यक्ति आत्मदर्शन नहीं पा सकता। यह स्वाध्याय एवं ध्यान का ही बल होता है जो साधक को आत्मदर्शन का अधिकारी बनाता है। स्वाध्याय परमात्म प्राप्ति के साधनों में प्रमुख साधन है। जो प्रमाद रहित होकर स्वाध्याय करता है निश्चित ही वह ध्यान–चिन्तन करते–करते अन्ततः भगवत् स्वरूप हो जाता है सिद्धयोग पत्रिका के माध्यम से योग का अमर सन्देश जन–जन तक पहुँच रहा है। इससे योग साधक व जिज्ञासु समाज वस्तुतः उपकृत हुआ है।

कई बार इस पत्रिका के पढ़ने मात्र से साधकों पर कृपायें हुई हैं। कई नये व्यक्ति को इसके अध्ययन करते हुये अनुभूतियाँ शुरू हो गई। गुरुदेव के दर्शन, दिव्य देवी देवताओं के दर्शन, संवाई धाम के दर्शन ध्यानावस्था में स्वप्न में होने लगे। इसी के माध्यम से कई संस्कारी आत्मा योग मार्ग में आये। पत्रिका के अध्ययन से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। चित्तशोधन होता है। अज्ञान का पर्दा हटने लगता है तथा ज्ञान व प्रकाश का प्रादुर्भाव होता है। अन्तर्जगत में प्रवेश हो जाता है एवं साधना की सच्ची राह मिल जाती है। यह गुरुदेव की वाङ्मय स्मृति है। अस्तु ! इस अवसर पर पत्रिका के पूर्व सह संपादक श्री देवी प्रसाद शर्मा 'दिव्य' के अथक श्लाघनीय प्रयास को भी भुलाया नहीं जा सकता है। वे स्वयं में एक अच्छे कवि, साहित्यकार, लेखक व विचारक थे। अपने जीवन के २६ वर्ष उन्होंने इसके प्रचार प्रसार में लगाये। वे गुरुदेव के लाडले बच्चों में से एक थे।

पत्रिका के विद्वान लेखकों, बहिनों का भी मैं कृतज्ञ हूँ जिनके योग परक विद्वतापूर्ण लेखों से इसकी शोभा बनी हुई है। अत्यधिक मँहगाई के कारण इसके खर्चे में भी लगातार वृद्धि हो रही है फिर भी इसके शुल्क में वृद्धि नहीं की गई है। गुरुभाई बहिनों से मेरा आग्रह है कि वे स्वयं इसके ग्राहक बनें और अन्यों को भी ग्राहक बनने की प्रेरणा दें जिससे इसके प्रकाशन में आ रहे घाटे को कम किया जा सके। जो इसमें आर्थिक सहयोग करते हैं उनका भी मैं बहुत कृतज्ञ हूँ। इस अंक के साथ ही आपका वार्षिक शुल्क समाप्त हो रहा है। अतः यथाशीघ्र सदस्यता को नवीनीकृत करा लें।

श्री आनन्दकन्द महाप्रभु रामलाल जी महाराज के पावन प्राकट्य दिवस श्री रामनवमी के अवसर पर इसका नया वर्ष प्रारम्भ होता है। इस बार श्री रामनवमी महोत्सव ५, ६ व ७ अप्रैल को मनाया जा रहा है। श्री सिद्धगुफा संवाई आनन्दकन्द श्री प्रभु जी की तपोभूमि व लीला भूमि रही है। यहाँ पर उनके तेजस् परमाणु आज भी विद्यमान हैं जो दुःखी व्यक्तियों के आधि–व्याधि को रज के सेवन मात्र से दूर कर देता है। इस मंगल बेला पर महाप्रभु व गुरुदेव के पावन चरणों में कोटि–कोटि नमन !

✲✲✲

आयातु सुस्वागतमस्तु तेऽद्य, नववर्ष ! संगृह्य नवप्रभातम्

पं० द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ

सर्वं नवं वीक्षितुमी हते जनः कथं वयं नेव चेष्टामहेऽतः।
गतो प्राक्तनो वत्सरो मित्रमद्य, संवृत्य विगलानि दिनानि तानि।।१।।
नवो वत्सरो नैव जानाति किञ्चित्, तस्य सकाशेऽपि किमस्ति कस्यचित्।
तथापीह वांच्छा सर्वस्य विद्यते, शुभाय भूयात् नवसुप्रभातम्।।२।।
अस्ति कश्चित् कोऽपि जनः स्वयं यो, स्वस्याप्रियं चिन्तनमेव कुर्यात्।
सदा सर्वदा सर्वकालं स्वकीयं, सर्वोजनः सुप्रियमेव चेष्टते।।३।।
अतोऽहमेसत् सुविचार्य भाषे, आलम्बनं चैव प्रभोर्गृहीत्या।
शुभमस्तु मित्रम् ! भवतां कृतेऽपि, सर्वं शुभं वत्सर एवमानयेत्।।४।।
याचे प्रभो ! सर्व समर्थ ! ईश ! एतादृशः स्यान्नववत्सरेऽस्मिन्।
षड्युत्तरो यत्तु द्विसहस्रवर्षकः, आयातु संगृह्य शुभं भवद्भ्यः।।५।।
आरोग्यमायुष्यमतीव सन्मतिः, स्वस्थं मनश्चापि धनं प्रभूतम्।
दिनानि मासाश्च समग्रवर्षे, भूयांसि भीमानि भवेश तो भवेत्।।६।।
आयातु सुस्वागतमस्तु तेऽद्य, नववर्ष संगृह्य नवप्रभातम्।।

---अनुवाद---

आओ नये वर्ष - है आज स्वागत, लाओ प्रभायुक्त प्रभात स्वागत !

नया ही सभी देखना चाहते हैं, अतः क्यों न हम भी न चाहें नयापन।
है आज बीता विगत वर्ष मित्र ! समेटे सभी दिन हुए जो पुरातन।।१।।
नया वर्ष भी जानता कुछ नहीं है, किसके लिये क्या लिये वह स्वयं है।
तो भी सभी की रही कामना यह, शुभावह रहे वर्ष नव का प्रभात है।।२।।
कहीं कोई व्यक्ति हुआ है स्वयं जो, अपने लिये अप्रिय सोचता हो।
सदा सर्वदा ही निरन्तर मनुज तो, सभी जन विचारें स्वहित में जो प्रिय हो।।३।।
इसीलिये मैं सुविचार कर ही, प्रभु ईश का ही समाश्रय ग्रहण कर।
शुभकर रहे मित्रवर ! आपको यह, लाये नया वर्ष शुभ ही संजोकर।।४।।
हे ईश ! हैं आप समर्थ-प्रभु हैं, यह वर्ष ऐसा शुभकर हो आये।
सहस्र दो संग लिये वर्ष षट् यह, वह आपके हित शुभभाव लाये।।५।।
नीरोग तन मन तथा दीर्घ जीवन, सद्बुद्धि युत और धन भी प्रचुर हों।
सकल वर्ष के जो दिवस मास वे भी, सदाशिव ! जगत् के सभी सुख विपुल हों।।६।।
आओ नये वर्ष है आज स्वागत, लाओ प्रभायुक्त प्रभात स्वागत।।

भजन

–भूपेन्द्र 'अंकुश' (जलेसर)

बड़ी मुश्किल से नर तन है पाया
मोह माया में क्यों रे ! भरमाया ।।टेक।।

तेरा ये जीवन जो है दिना दो चार का है।
सुमिर ले राम को तू समय मँझधार का है
चुकता कर दे तू अपना बकाया। मोहमाया -१-

योनि चौरासी का रे ! बुरा है ऐसा चक्कर।
चक्र जो मारे चक्कर बना देता घनचक्कर।।
तन को कितनी दफा खोया पाया। मोहमाया -२-

अरे माटी के पुतले ! रँगा जग के रंगों में।
बिताया अब तक तूने वक्त जंगों दंगों में।।
कभी रोया; कभी मुस्कराया। मोहमाया -३-

राम का नाम सच्चा और सब झूटा झूठा।
ग्रन्थ कहते हैं उसको अनोखा और अनूठा।।
है माया तो ईश्वर की छाया। मोहमाया -४-

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

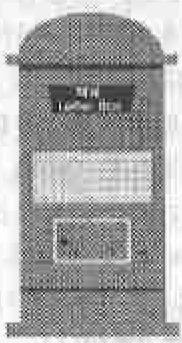

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर स्पेस आबंटन (स्थान चयन) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप)
3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेण्टिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पत्रों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु0 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रु. 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

विहाय कामान् सर्वान्

गीता भगवान के मुखारविन्द से निकली अमोघ वाणी है। सम्पूर्ण गीता के अध्ययन से योग का ही ज्ञान होता है। यह योग गीता के विभिन्न अध्यायों के माध्यम से विभिन्न रूपों में दृष्टिगत होता है। शास्त्रों के अध्ययन से यह एक तथ्ययुक्त बात निश्चित है कि जो सामान्य व्यवहार में है, वही शास्त्रों में भी है। जो लौकिक व्यवहार में नहीं है, वह शास्त्र में भी नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि शास्त्र एवं पुराण किसी महापुरुष के अनुभव पर आधारित है, जो सर्वग्राह्य और सर्वमान्य है। इसलिए इसके बारे में तर्क–वितर्क करना न्याय संगत नहीं होगा। पता नहीं वह महापुरुष ने साधन के किस धरातल पर स्थित होकर उसकी रचना की है। हमारे साधन का धरातल क्या है ? इस आधार पर उसके सम्बन्धों में खंडन–मंडन निरर्थक है। इसको व्यवहारिक रूप में ऐसे समझें–जैसे कोई उच्च कक्षा का विद्यार्थी किसी अपने स्तर से निचले कक्षा के विद्यार्थी से वार्तालाप करे तो निचले स्तर का विद्यार्थी उसका सम्यक उत्तर नहीं दे सकता, उसको अपनी मानसिक क्षमता एवं योग्यता को बढ़ाना ही पड़ेगा।

यही बात साधन के क्रमिक सोपानों का है। साधन में भी योग्यता एवं पात्रता तथा योग्यता निश्चित रूप से **विहाय कामान्** के अनुसार ही सिद्ध हो सकता है। जिस प्रकार विद्यार्थी को सुख एवं सुखार्थी को विद्या त्यागनी ही पड़ती है। उसी प्रकार त्याग के बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं हो पाता है। यह त्याग वस्तुतः शक रूप में देखने और सुनने में हो तो उपहास के जैसा लगेगा किन्तु यह यथार्थ और सत्य है कि त्याग के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। मनुष्य योनि कर्मयोनि है, यह विज्ञ पुरुष ही जानता है। अन्य योनियां भोग योनियां हैं। इसका तात्पर्य यह है कि मुक्त मात्र मनुष्य ही हो सकता है। अथवा यह कहा जाय कि–मनुष्य कल्याण का भागी हो सकता है। इसके लिए विभिन्न युक्तियां हैं। उन युक्तियों का आश्रय लेकर व्यक्ति साधन के उच्च स्तर को प्राप्त कर सकता है। योग की स्थिति विशेष को साधक प्राप्त भी कर रहा है। लेकिन वह एक धरातल पर पहुंचकर मौन रहता है क्योंकि साधक को चेताते हुए कहा गया है कि **''उनमनि रहवा भेद न कहिवा''** तात्पर्य यह कि उस भेद को कहना नहीं है। अब प्रश्न उठता है कि क्या प्रत्येक व्यक्ति की ऐसी स्थिति हो सकती है या कुछ लोगों की ही हो सकती है। यहाँ व्यक्ति के कर्म संस्कार आ जाते हैं क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति कर्म करता रहता है। उसके संस्कार बनते ही रहते हैं। वे संस्कार किस प्रकार बनते रहते हैं ? व्यक्ति नहीं जान पाता लेकिन यह

प्रक्रिया घड़ी की सुई की तरह हो रही है।

सम्भवतः इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में स्वयं अपने मुखारबिन्द से कहा है–**''ऊनेन जन्म संसिद्धि यत्रोयातु पराम् गतिम्''** तात्पर्य यह है कि परमगति को भगवान ने गिनती की सीमा में नहीं बाँधा है। अब समस्या यह है कि–उस परमात्मा का आत्मा से सम्मिलन किस प्रकार हो लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाय तो आत्मा का परमात्मा से कहाँ कब कैसे किस प्रकार वियोग है। उत्तर स्पष्ट है कि–आत्मा का परमात्मा से कभी वियोग होता ही नहीं है। जैसे– हमारे घरों में बिजली के सारे उपकरण हैं उनका सम्बन्ध बिजली शक्ति से है जैसे बिजली आ जाए सारे उपकरण क्रियाशील हो जायेंगे। लेकिन जब तक बिजली नहीं है वे सब उपकरण निष्क्रिय रहेंगे। यही बात मनुष्य के साथ निरन्तर हो रही है। नवरात्र आता है तो सभी सक्रिय हो जाते हैं। नवरात्र के समाप्त होते मनुष्य रूपी उपकरण निष्क्रिय हो जाते हैं। यहाँ निष्क्रियता से तात्पर्य यह है कि–वह कर्म तो कर रहा है लेकिन अपने अनुरूप कार्य कर रहा है। कामनाओं से बंधकर कार्य कर रहा है। लौकिक कार्य कर रहा है। लेकिन वह कोई कार्य भी आध्यात्मिकता की क्षणिक आड़ में कर रहा है। इसलिए कभी सफलता तथा कभी असफलता मिलती रहती है।

''उनमनि हवा भेद नहीं कहिवा'' की स्थिति न्यारी होती है। वह **''विहाय कामान्''** वाली स्थिति होती है। श्रीमदभगवद्‌गीता के दूसरे अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण जी ने कहा है–

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरित निःस्पृहः।

निर्ममो निरहकारः स शान्तिमधिगच्छति।।

अर्थात् जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममतारहित, अहंकार रहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है वही शान्ति को प्राप्त होता है। जो प्राणी शान्ति को प्राप्त होता है। वही ब्रह्मानन्द को प्राप्त हो जाता है।

आगे भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है–

एषा ब्राहनी स्थितिः पार्थ नैना प्राप्य विमुहयति।

स्थित्वा स्यामन्त कालेऽपि ब्रह्म निर्वाण मृच्छति।।

भगवान ने कहा है–यह ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष की स्थिति है। उसको प्राप्त होकर योगी कभी भी मोहित नहीं होता। अन्त काल में भी इस ब्राह्मनी स्थित में स्थित होकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त हो जाता है।

भगवान जब अर्जुन से योग की बात करते हैं तो वह योग्य शिष्य को प्राप्त किए हुए

है। इसके बावजूद भी विभिन्न समस्याओं को अर्जुन उठाता है। वह साधक की तरह बात करते हुए सामान्य मनुष्य की तरह बातें करता है। जहाँ तक मेरा अनुमान है कि जब अर्जुन सामान्य मनुष्यों की तरह बातें करते हैं तो भगवान का कुछ उद्‌देश्य भी है। वह उद्‌देश्य है–"सामान्य जन के प्रति भी योग की निष्ठा को भरना या आत्मकल्याण का भागी बनाना है"। आत्मकल्याण भी भगवान की कृपा के बिना नहीं हो सकता।

हमारे सिद्ध गुफा से सम्बन्ध रखने वाला व्यक्ति गुरुदेव से शक्ति पातित् है सिद्ध गुफा के साधक को गुरुदेव भगवान अर्जुन के तरह ही अपनी शक्ति से पात्र बना लेते हैं। तथा योग के बीज का वपन कर देते हैं। पुनः गुरुदेव के शब्दों पर ही ध्यान दें। गुरुदेव भगवान सदैव कहा करते थे कि–योगी सामने से प्रकाश देकर पुनः पीठ पीछे कर लेता है। गुरुदेव भगवान हाथ के संकेत से इस बात को सिद्ध कर देते थे कि अब साधक ने उस शक्ति का उत्थान किया या पतन उस पर निर्भर करता है। गुरुदेव भगवान यहां तक कहते थे कि "साधको (लल्ला) इतनी साधना कर लो कि अपनी मृत्यु के बारे में जान लो।" यह सिद्ध है बहुत से साधक जानते भी होंगे लेकिन वह गोप्य है 'उनमनि रहिवा भेद न कहिवा का चक्कर घूमता रहता है।

इसलिए इन साधकों को वर्तमान परिवेश और परिस्थिति की प्रतिकूलता के अनुसार–गुरुदेव से प्राप्त सिद्ध मंत्र से साधन के सोपानों को सिद्ध कर सकते हैं। अथवा सांसारिक जगत में रहकर "**विहाय कामान्**" का धीरे–धीरे त्याग करते रहना ही चाहिए–जिससे अंतयति सो गति के अनुसार सद्‌गुरु की कृपा बनी रहे।

गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है कि–

यस्य सर्वे समारम्भा काम संकल्पवर्जितः।
ज्ञानाग्निदग्ध कर्माणं तमाहुः पण्डित बुधाः।।

अर्थात् जिस व्यक्ति के शास्त्र सम्मत कर्म बिना कामना या संकल्प के होते हैं तथा जिसके समस्त कर्म ज्ञान रूप अग्नि के द्वारा भस्म हो गये हैं उस महापुरुष को ज्ञानीजन पण्डित कहते हैं।

❊❊❊

जिसने भगवान के साक्षात् दर्शन नहीं किये, संतों में उसकी मान्यता नहीं। संत और भक्त वही है जिसे भगवान का सगुण-साक्षात्कार हुआ हो। भोजन के बिना तृप्ति कहाँ ?

गुरु-भक्ति का चमत्कार

लेखक–**वेदव्रत द्विवेदी** (उमापुर)

अनादि काल से गुरु–महिमा का वर्णन पाया जाता है। गुरु का केवल शरीर ही पूज्यनीय हो ऐसी बात नहीं है, गुरु एक महान तत्व है। गुरु भगवान से भी बड़ा है तथा परमब्रह्म से भी बड़ा है।

जैसे शालिग्राम शिला में परमात्मा की भावना की जाती है अथवा एक धातु–मूर्ति में प्रभु–तत्व की भावना की जाने पर उसमें परमात्मा का प्रकाश होकर भक्त को सब कुछ प्राप्त होता है, वैसे ही गुरु तत्व की गुरु के शरीर में महान ब्रह्म से भी बड़े सत्गुरु तत्व की उपासना की जाने पर शिष्य को सब कुछ प्राप्त होता है। इसका प्रमाण एकलव्य भक्त का चरित्र है। द्रोणाचार्य ने उसे विद्या सिखाने से इनकार किया; किन्तु गुरु द्रोण की श्रद्धा भक्ति से गुरु द्रोण की मिट्टी की प्रतिमा बना ली और उसी के द्वारा उसे समस्त विद्यायें प्राप्त हो गयीं।

यहाँ तक कि जब साक्षात् परात्पर ब्रह्म भी भूतल पर अवतार लेते हैं तो श्रीराम और श्रीकृष्ण रूप में आने पर वे भी गुरु–दीक्षा लेते हैं। गुरु के बिना किसी की प्रगति हो ही नहीं सकती। गुरु करने से पहले खूब सोच विचार कर, खूब अच्छी तरह छानबीन करके जाँच लेना चाहिए, तब गुरु करना चाहिए। गुरु कर लेने के बाद फिर उनकी परब्रह्म से ही उपासना करनी चाहिये। उनके दोष देखना महान पाप है। शिष्य की श्रद्धा ही प्रधान रूप से कार्य करती है। श्रद्धा–भक्ति होने पर गुरु की कृपा का पूर्ण प्रकाश प्रकट होता है। यहाँ तक कि मूर्ख से मूर्ख शिष्य भी महान बन जाता है। बिना पढ़े विद्या आती है। और बिना साधना से सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

प्रसिद्ध ग्रन्थ भक्तमाल के रचयिता श्री नाभा जी को बिना पढ़े ही विद्या आ गयी थी एवं दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी थी। उनके गुरु श्री अग्रदास जी महाराज ध्यान मग्न थे नाभा जी पंखा कर रहे थे। इतने में अग्रदास जी के शिष्य, एक राजा का जहाज समुद्र में डूबने लगा । राजा ने प्राणसंकट के समय गुरु का ध्यान किया। अग्रदास जी ध्यान में भगवान श्रीराम जी का श्रृंगार कर रहे थे। राजा के पुकारने पर अग्रदासजी का मन उधर खिंचा; किन्तु नाभा जी ने तुरन्त योगबल से उस जहाज को समुद्र में डूबने से बचा लिया और पार लगा दिया एवं बोले कि–"गुरुदेव जी ! आप भगवान के श्रृंगार से मन हटाइये, जहाज को मैंने पार लगा दिया।" जब ध्यान समाप्त हुआ तो अग्रदास जी ने बड़े आश्चर्य से नाभा जी को देखा और बोले–"बड़े आश्चर्य की बात है कि तुम्हारा यहाँ तक प्रवेश हो गया कि मेरे मन की बात भी देखते हो और समुद्र में डूबते जहाज को भी देख लिया तथा अपनी

शक्ति से पार भी कर कर दिया। साथ ही मेरी सेवा में खड़े पंखा भी कर रहे हो।" श्री नाभा जी ने कहा–गुरुदेव ! मैं वही हूँ, जिसे पाँच वर्ष की आयु से आपने अपनी जूठन खिला–खिला कर पाला है। यह आपकी सेवा का ही प्रताप है कि मुझे ऐसी शक्ति प्राप्त हो रही है।" उसी समय अग्रदास जी ने आज्ञा दी कि अब तुम 'भक्तमाल' नामक ग्रन्थ की रचना करो। इस प्रकार गुरु–भक्ति से अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त होती देखी जाती हैं। इसीलिए तो गोस्वामी तुलसीदास जी ने मानस में लिखा है–

श्री गुरु पद नख मणि गण ज्योति।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती ।।

गुरु की कृपा से ही गोस्वामी जी ने श्री रामचरित मानस की रचना की। इस प्रकार सूरदास जी को भी पहले प्रकाश नहीं था। जब श्री वल्लभाचार्य जी को गुरु बनाया तो उन्हें भी दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई तथा श्रीकृष्ण चरित्र की रचना कर सके।

वे अपनी दिव्य दृष्टि से भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों की बातें बता देते थे। एक दिन सूरदास जी की दिव्य दृष्टि की परीक्षा के लिए पुजारियों ने श्रीनाथ जी का शृंगार किया ही नहीं, केवल लँगोटी पहिना दी और मुख पर दही लगा दिया, एक मोती की माला पहना दी। साथ ही लोगों को सिखा दिया, कहना कि आज वस्त्राभूषण बहुत सुन्दरता से सजाये गये हैं, जब सूरदास जी आये तो उन्होंने पदगान किया–

इस प्रकार सूरदास जी को भी गुरु–कृपा से दिव्य दृष्टि एवं श्रीकृष्ण की प्राप्ति हुई थी। गुरु में भक्ति तथा सेवाभाव हो, साथ ही में गुरु के वचन पालन में तत्परता हो, तब काम बनता है।

गुरु–भक्ति का विलक्षण प्रभाव है। इस समय भी गुरु भक्ति के द्वारा कितने ही भक्तों को दिव्य अनुभव होते हैं, जिसका वर्णन करने के लिए इस छोटे से लेख में जगह नहीं है। उसके लिए तो स्वतन्त्र विशाल ग्रन्थ लिखा जाय फिर भी कम है। हमारे गुरुदेव के यहाँ मैंने स्वयं सैकड़ों ऐसे चमत्कार देखे। कितने ही पुत्रहीनों को पुत्र मिले और कितने ही दरिद्र धनवान हो गये कितने ही मरणासन्न रोगी रोग मुक्त होकर बलिष्ठ हो गये।

गुरुदेव भगवान, स्वयं त्रिकालदर्शी थे। जो भी नर–नारी बाल वृद्ध रोगी आया, प्रभु जी ने सबको बड़े प्रेम से गले लगाया, तत्काल ही सब का समाधान हो गया–ऐसी अनेकों घटनायें प्रत्यक्ष आज भी देखी सुनी जाती हैं। कमी है तो अपनी कमी है। हमारा हृदय प्रपंचों से ग्रसित होने के कारण बहुत मलिन हो रहा है। इसलिए गुरु के प्रति श्रद्धा का भाव उदय नहीं हो रहा है। वास्तव में गुरु तत्व में एवं गुरु कृपा में कमी नहीं है।

गुरुदेव भगवान प्रायः कहा करते थे, मान्डे मिले, लेकिन फूटे, इधर से ज्ञान भरता हूँ, उधर सब खाली हो जाते हैं।

अन्त में हम यही कह सकते हैं कि इस दुःखालय संसार में एक ऐसी अमूल्यनिधि हम लोगों को प्राप्त है वह है गुरुदेव शरणं, गुरुदेव नमामि, अर्थात् गुरु कृपा जो प्राणी को इस

दुरुह आवागमन के कराल चक्र से मुक्त कर देती है। जिन्हें इस अलौकिक निधि की प्राप्ति हो गई वे धन्य हैं।

अजहुँ करै गुरु-भक्ति जो सेवा में मन देय।
चमत्कार देखै दृगन, सकल पदारथ लेय।।

✲✲✲

गुरुवर मुझपै दया कर देना

दिशा, स्वाती, श्वेता (संकीर्तन मण्डल झाँसी)

गुरुवर मुझपै दया कर देना,
मुझे भक्ति का वर देना।
आठ पहर तेरा भजन करूँ,
मुझे चरण शरण रख लेना।।

१. *इस तन में जब तक प्राण रहें,*
मेरे मन में तेरा ही नाम रहे।
तुझे हर पल याद करूँ भगवन,
चरणों में तुम्हारे ध्यान रहे।।
गुरुवर अपनी रहमत करके तुम भक्ति का वर देना.......

२. *तेरी पूजा का मुझे ज्ञान नहीं,*
तेरी शक्ल का भी अनुमान नहीं।
मेरे सिर पर हाथ धरो गुरुवर,
दो ज्ञान मुझे कोई ज्ञान नहीं।।
गुरुवर अपनी रहमत करके तुम भक्ति का वर देना......

३. *हो मुझ पर ये अहसान तेरा,*
मैं करती रहूँ गुणगान तेरा।
मुझ पर उपकार करो गुरुवर,
पूरा कर दो अरमान मेरा।।
गुरुवर रहमो करम कर देना मुझे चरण शरण रख लेना।

✲✲✲

चिज्जड़ ग्रन्थि खोलने के उपाय

प्रेषक-जनक कुलश्रेष्ठ (ग्वालियर)

चेतन (आत्मा) और जड़ (बुद्धि) के अविवेक पूर्ण संयोग से जीव बना आत्मा अहंता और ममता के कारण संसार में बार-बार जन्म-मरण के चक्कर में पड़कर दुःख प्राप्त करता रहता है। यही जड़-चेतन की गांठ है। इस ग्रन्थि भेदन के लिए गोस्वामी तुलसीदास ने उपाय सुझाए हैं, जो करण सापेक्ष हैं।

जप, तप, जम, नियम अपारा। जे श्रुति कह धर्म अचारा।।

जप : जड़-चेतन की ग्रन्थि भेदन के लिए जप का बड़ा महत्व है। साधक को एकान्त स्थान में नियत समय पर अपने निश्चित किए हुए आसन पर बैठकर अर्थ की भावना के साथ गुरुपदिष्ट मन्त्र का जप करना चाहिए। यदि साधक का कोई गुरु न हो तो वह अपने जिस इष्ट का उपासक हो, उसके पवित्र नाम का जप करे।

प्रारम्भ में उपांशु जप करना चाहिए। इस जप में केवल होठ हिलते हैं। पास में बैठे हुए व्यक्ति को उसका मन्त्र सुनाई नहीं देता है। इस जप की जब परिपक्व अवस्था हो जाती है, तब मानसिक जप चलने लगता है। इस जप में जिह्वा तथा होठों का चलना बन्द हो जाता है। केवल मन में जाप चलता रहता है। जब मानसिक जप की साधना परिपक्व हो जाती है, तब अजपा जप चलने लगता है। यह जप श्वांस-प्रश्वांस के साथ चलता रहता है। प्रत्येक मनुष्य चौबीस घन्टों में २१६०० बार श्वांस लेता है। प्राणवायु के अन्दर जाने को श्वांस कहते हैं और बाहर निकलने को प्रश्वांस कहते हैं। जब प्राणवायु अन्दर जाती है तब **"सो"** शब्द की ध्वनि होती है। और जब श्वांस बाहर निकलती है है तब **"हं"** शब्द की ध्वनि होती है। यह **"सोऽहं"** का जप प्रत्येक मनुष्य सहज में ही प्रतिश्वांस-प्रश्वांस के साथ करता रहता है, परन्तु उसको इसका भान नहीं होता है। जब साधक ध्यान पूर्वक इसकी साधना करता है तब उसका जप बिना जप किए हुए ही चलता रहता है। इसको अजपा जप कहते हैं।

तप :- **अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।**
दम्भाहंकार संयुक्ताः कामराग बलान्विताः।। गीता १७/५
कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राम चेतसः।
मां चैवान्त शरीरस्थः तान्विद्धायासुरनिश्चयान।। १७/६

प्रायः शास्त्र की आज्ञा के विपरीत शरीर को कष्ट देकर तप करने को तप समझने

वाले व्यक्ति असुर कहे जाते हैं। ऐसे असुर कहे जाने वाले व्यक्ति कांटों पर सोते हैं। उल्टे लटककर तप करते हैं। अग्नि में अपने शरीर को तपाते हैं आदि। इस प्रकार के व्यक्ति अपने शरीर को तो कष्ट देते ही हैं, साथ ही उनके शरीरों में स्थित अन्तर्यामी श्री प्रभु भगवान को भी कष्ट देते हैं।

"द्वन्द्व सहनं तपः"। सर्दी–गर्मी, मान–अपमान, जय–पराजय, यश–अपयश, हानि–लाभ, अनुकूल–प्रतिकूल परिस्थितियों में सम रहना ही तप कहलाता है। इन परिस्थितियों से जो विचलित नहीं होता है वही तपस्वी कहलाता है। ऐसा साधक इन द्वन्द्वों से ऊपर उठकर सतत् भगवन् चिंतन में रत रहता है। यही वास्तविक तप का स्वरूप है। यम–नियम–योग के आठ अंग होते हैं। यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि। इनमें प्रथम पांच बहिरंग और अन्तिम तीन अंतरंग साधन हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य यम कहलाते हैं। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान नियम कहलाते हैं। साधक को यथाशक्ति यम–नियमों का पालन करते हुए धारणा, ध्यान और समाधि का अभ्यास करते रहना चाहिए। इस प्रकार का अभ्यास करते रहने से कालान्तर में आत्मसाक्षात्कार हो जाता है।

उपरोक्त करण सापेक्ष साधना के साथ–साथ श्रुतियों में वर्णित करण निरपेक्ष साधना करते रहने से जड़–चेतन की गांठ स्वतः खुल जाती है। यह पद्धति विचार प्रधान है।

स्वामी रामसुखदास जी का अभिमत है :–

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।

यह शरीर इदं है। इदं का अर्थ होता है–अपने से दूर अर्थात् यह। यह शब्द उसी के लिए प्रयुक्त होता है जो अपने से दूर होता है। इस कारण यह स्थूल शरीर इदं है। यह आत्मा से भिन्न स्वभाव वाला है। आत्मा, नित्य, अविकारी और अपरिवर्तनशील है और यह शरीर अनित्य, विकारी तथा परिवर्तनशील है। अतः यह स्थूल शरीर आत्मा का विषय न होकर इन्द्रियों का विषय होने से इदम् है।

पांच ज्ञानेन्द्रियां पांच कर्मेन्द्रियां पांच प्राण, मन और बुद्धि सत्रह तत्वों से निर्मित सूक्ष्म शरीर होता है। यह सूक्ष्म शरीर भी चेतन आत्मा से भिन्न गुणों का होने से इदम् है।

अज्ञान को कारण शरीर कहते हैं। मनुष्य को बुद्धि तत्व तक का तो ज्ञान होता है परन्तु बुद्धि से आगे का ज्ञान न होने से इसको अज्ञान कहते हैं। यह अज्ञान सम्पूर्ण शरीर का कारण होने से कारण शरीर कहलाता है। सुषुप्ति में बुद्धि से परे की स्थिति होने से अज्ञान ही रहता है। यह भी आत्मा से भिन्न स्वभाव वाला होने से इदम् है। कारण शरीर भी आत्मा का विषय न होने से अर्थात् आत्मा द्वारा जानने में न आने से इदम् कहलाता है।

वास्तव में ये तीनों शरीर हैं तो इदम्। पर जीव ने अहंता और ममता के कारण इनको अपना मान लिया है और इनके सुख, दुख, मान, अपमान आदि को अपना मानकर स्वयं सुखी–दुखी होता रहने से संसार चक्र में फंस जाता है।

इदम् प्रथकता का द्योतक है। जो वस्तु अपने से अलग दिखने वाली है, वह इदम् कहलाती है। सबसे पहले देखने में आता है पंचतत्वों से बना हुआ स्थूल शरीर। यह शरीर दृश्य है और परिवर्तनशील है। इसको देखने वाले नेत्र हैं। नेत्र दृष्टा हुए। दृश्य में रंग, आकृति आदि बदलते रहते हैं, परन्तु देखने वाले नेत्र एक ही रहते हैं। अतः स्थूल शरीर इदम् है।

इसी प्रकार नेत्रों से कम दीखना, बिल्कुल न दीखना आदि नेत्रों में होने वाले परिवर्तनों को मन देखता है। अतः नेत्र दृश्य है और मन दृष्टा हुआ। अतः सिद्ध है कि नेत्र भी इदम् है।

कभी क्षुब्ध होना, कभी शान्त होना, कभी स्थिर और कभी चंचल होना आदि मन के परिवर्तनों को बुद्धि द्वारा जाना जाता है। अतः मन दृश्य है और बुद्धि दृष्टा है। इस प्रकार मन भी इदम् है।

कभी ठीक समझना, कभी कम समझना और कभी बिल्कुल न समझना बुद्धि में होने वाले परिवर्तनो को आत्मा (स्वयं) द्वारा देखा जाता है। अतः बुद्धि दृश्य और चेतन आत्मा दृष्टा है। इस प्रकार बुद्धि भी इदम् है। चेतन आत्मा का कोई दृष्टा नहीं है।

जब यह जीव बना आत्मा जो स्वयं चेतन है, जड़ पदार्थों से तादात्म्य करके जड़ के सहित अपने को "मैं" मान लेता है। यह "मैं" न तो जड़ है और चेतन ही है। जड़ में विशेषता देखकर चेतन जड़ के साथ एक होकर कहता है कि मैं धनी हूँ, बड़े कुटुम्ब वाला हूँ, मैं विद्वान हूँ आदि। और चेतन में विशेषता देखकर जड़ चेतन के साथ एक होकर कहता है कि मैं ब्रह्म हूँ, मैं आत्मा हूँ आदि। यही जड़ चेतन की गांठ है। इसलिये साधक को इस पर विचार करते रहना चाहिए कि यह जड़ शरीर मेरा नहीं है और न मैं शरीर हूँ। इदम् का अर्थ है, जो अपना नहीं है। जो वस्तु अपनी होती है उस पर अपना अधिकार होता है और जो वस्तु अपनी नहीं होती है, उस पर अपना अधिकार नहीं होता है। इस प्रकार यह शरीर भी अपना नहीं है। बचपन आया चला गया। युवावस्था आई चली गई। अब वृद्धावस्था आ गई। शरीर जर्जर हो गया। शरीर में होने वाले इन परिवर्तनों को हम नहीं रोक सके, क्योंकि ये अपने नहीं है। फिर भी भूल से हमने इनको अपना मान लिया है। यही साधक की सबसे बड़ी भूल है। इस भूल को मिटाने के लिए साधक को सतत् विचार करते रहना चाहिए।

जीव नाम का कोई तत्त्व इस शरीर के अन्दर नहीं है। चेतन आत्मा जो ईश्वर का अंश है, उसी की सत्ता से यह शरीर क्रियाशील रहता है। जब यह आत्मा इस शरीर को अपना मान लेता है, तब अहंता और ममता के कारण ही जीव जन्म–मरण के चक्कर में फंस जाता है। वास्तव में न तो यह शरीर उसका है और न ही इस शरीर से सम्बन्ध रखने वाले सगे–सम्बन्धी, स्त्री, पुत्र, कलत्र आदि उसके हैं। ये सगे–सम्बन्धी ऋणानुबन्ध के कारण कुछ काल के लिए एकत्रित होते हैं और जब उनका ऋण चुकता हो जाता है तभी उसको छोड़कर चले जाते हैं। साधक को सदैव यह विचार करते रहना चाहिए कि ये सगे सम्बन्धी न पहिले मेरे थे और न बाद में मेरे रहेंगे। इसलिए ममता, मोह का त्याग करके अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहना चाहिए। घर में रहकर ही विरक्त होकर कर्त्तव्य का पालन करते रहने से मुक्ति स्वतः सिद्ध है। इस प्रकार की भावना से विवेक जाग्रत होगा और साधक जीवनमुक्त हो जाएगा।

ब्रह्म में **"एकोऽहम् बहुस्याम प्रजायै"** के स्फुरण से इस जगत की उत्पत्ति हुई। अतः ब्रह्म और जगत अभिन्न हैं। ब्रह्म ही जगत है और जगत ही ब्रह्म है। जैसे मिट्टी से बने घड़े मिट्टी ही हैं। सोने से बने गहने सोना ही है। यही भावना साधक को करते रहना चाहिए और संसार की प्रत्येक वस्तु, पदार्थ और क्रिया में ब्रह्म के दर्शन की अनुभूति करते रहने से यह जड़ चेतन की गांठ छूट जाएगी। यदि कोई यह शंका करे कि जब जगत ब्रह्म है तब यह सारा संसार जो सत्यवत् दिखाई देता है, वह क्या है ? इसका समाधान यह है कि ब्रह्म के अज्ञान से ही यह संसार सत्यवत् दिखाई देता है। जैसे रस्सी सर्प। जब ब्रह्म का ज्ञान हो जायेगा तब यह भ्रम स्वतः मिट जायेगा।

जड़–चेतन की गांठ को खोलने के लिए उपरोक्त दो विधियां हैं (१) क्रिया प्रधान (२) विचार प्रधान। साधक अपनी रुचि के अनुसार किसी भी एक विधि का अथवा दोनों विधियों का पालन कर सकता है। सर्वश्रेष्ठ तो यह है कि साधक को दोनों ही विधियों का पालन करते रहना चाहिए।

❊❊❊

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि।।

मेरी जिह्वा के अग्रभाग में माधुर्य हो। मेरी जिह्वा के मूल में मधुरता हो। मेरे कर्म में माधुर्य का निवास हो और हे माधुर्य ! मेरे हृदय तक पहुँचो।

योगिनी बहिन सुशीला देवी का दिव्य प्रयाण

—सम्पादक की लेखनी से—

बहिन सुशीला देवी भाई दुष्यन्त सिंह सिसौदिया रिटा० जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट की धर्मपत्नी थीं। वे कुछ दिनों से अस्वस्थ चल रही थीं। अभी ३० दिसम्बर को उन्होंने अपने नश्वर शरीर का त्याग कर दिया। उन्होंने जिस प्रकार से देह त्याग किया है उस प्रकार से बड़े–बड़े योगी भी नहीं कर पाते। मृत्यु के समय हजार बिच्छुओं के एक साथ काटने जैसा दुःख होता है, ऐसा शास्त्र बताते हैं। बहिन सुशीला ने आनन्दित होकर प्रभु चरणों में वृत्ति स्थिर करके शरीर को त्यागा। वे ८० वर्ष के लगभग की थीं। शरीर त्याग के एक दिन पूर्व ही उन्होंने कह दिया था कि कल दोपहर बाद मैं इस शरीर को छोड दूँगी। इस बीच में उन्होंने अपने परिवारीजनों को कई आज्ञायें दीं। कई सेविकाओं में अपने शरीर से आभूषण उतार कर वितरित कर दिये। शरीर छोड़ने के दिन प्रातः काल से ही अपने शरीर को आभूषित करवाया। चन्दन, सिन्दूर आदि से शरीर को अलंकृत किया। जिस प्रकार से सौभाग्यवती देवियाँ श्रृंगार करती हैं वैसे ही श्रृंगार किया। वे छोटी उम्र में ही गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से शक्तिपात योग दीक्षा प्राप्त कर चुकी थीं। प्रारम्भ से ही बहुत अच्छी ध्यानस्थिति बन गई थी। बहिन सुशीला देवी में अव्यभिचारिणी भक्ति थी। गुरुदेव को ही परमदेव के रूप में मानकर ध्यान, पूजा, अर्चना करती थीं।

'गुरुपद नख मणिगण ज्योति सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती' के सिद्धान्तानुसार जो गुरुचरणों का ध्यान करते हैं उन्हें दिव्य दृष्टि मिल जाती है और उनके अन्तःकरण में व्याप्त अन्धकार दूर हो जाता है। बहिन सुशीला देवी को दिव्य दृष्टि तो पहले से ही प्राप्त थी इस समय भी वह उसी दिव्य दृष्टि से युक्त होकर अपने अनुभवों व साक्षात्कार की बातें बताती जाती थी। उन्हें किस प्रकार से परम गुरुदेव योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के अलौकिक दर्शन हो रहे हैं। तथा इनके दिवंगत पूर्वज भी श्री प्रभु जी के चरणों में बैठकर आरती कर रहे थे सब वृतान्त बताती जाती थी। प्रातःकाल श्री मद्भगवद् गीता के कई अध्यायों का श्रवण किया। **'गुरुदेव जय जय सद्गुरु जय जय अखण्ड ज्योति प्रभु रामलाल जय जय'** का दिव्य संकीर्तन अनवरत चल रहा था। अन्तिम दिनों में उनके बड़े सुपुत्र दिनेश सिसौदिया भी कई सप्ताह का अवकाश लेकर मातृ चरण की सेवा में संलग्न थे। धन्य है वे व्यक्ति जिन्हें अपनी मातृचरण की अन्तिम दिनों की सेवा मिलती है। इन्होंने अपना हर श्वांस मातृसेवा में लगा दिया।

माता की भी वत्सवत्सलता अपूर्व थी। ऐसे मातृभक्त पर भगवान् स्वतः प्रसन्न रहते हैं। इनके सभी पुत्र–पुत्रियाँ तथा बहुऐं तन्मयता से सेवा में आज्ञापालन में तल्लीन रहते थे। सिसौदिया परिवार में सर्वप्रथम धर्मज्ञ सिंह ने योग दीक्षा ली। तत्पश्चात् बड़े भाई दुष्यन्त सिंह सिसौदिया जी व बहिन सुशीला देवी ने दीक्षा ग्रहण की। इन्हीं के भाई इटारसी वाले ध्रुवेन्द्र सिंह तथा ग्वालियर वाले भाई ने दीक्षा ली। इन सब पर गुरुदेव की असीम कृपा रही है। बहिन सुशीला देवी के देह त्याग के समय उत्सव का सा माहौल था। उन्होंने सभी से कह दिया था मेरी मृत्यु के बाद कोई भी रोना नहीं ऐसा करने से मेरा मन वापिस खिंचता रहेगा। उन्होंने पूर्ण अपरिग्रह के यम का पालन किया। किसी व्यक्ति या वस्तु में आसक्ति नही रखी। योग दर्शन में अपरिग्रह का फल बताते हुये पतञ्जलि भगवान् कहते हैं–अपरिग्रह के स्थैर्य से पूर्व जन्म का बोध रहता है। मैं पहले कहाँ था कैसा था इत्यादि घटनाओं का ज्ञान रहता है। बहिन सुशीला देवी ने भी अपने मन को सब प्रकार से आसक्ति रहित करके भगवान के चरणारविन्दों में वृत्ति स्थिर कर ली थी। भाई दिनेश चन्द जी ने उनके अन्तिम समय की वीडियो रील बनवा ली है उसके देखने से ज्ञात होता है योगनिष्ठ व्यक्ति किस प्रकार से अपने प्राणों का त्याग किया करता है। इस प्रकार से बहिन सुशीला देवी प्रभु चरणोंमें समा गई और उनका जीवन कृतकृत्य हो गया। वस्तुतः वे मृत्यु पर पैर रखकर दिव्य लोक की अधिकारी बन गई।

❊❊❊

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

(ईशावास्योपनिषद्)

शास्त्रनियत कर्मों को (ईश्वर पूजार्थ) करते हुए ही इस जगत में सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करनी चाहिये। इस प्रकार (त्याग भाव से, परमेश्वर के लिए) किए जाने वाले कर्म, तुझ मनुष्य में लिप्त नहीं होंगे, इससे भिन्न अन्य कोई प्रकार अर्थात् मार्ग नहीं है, जिससे कि मनुष्य कर्म से मुक्त हो सके।

''भाव प्रसून''

मोतीलाल, कासगंज (एटा)

तुम्हें याद करते हैं गुरुदेव हम।
भुला ना सकेंगे, भुला ना सकेंगे जब तक है दम।।

इस दीन का जीवन प्रभुजी, तुमने बचाया।
महारोग को भी एक क्षण में मिटाया।
महामन्त्र देकर दिया दुबारा जनम।।
तुम्हें याद०

ध्यान शक्ति देकर तुमने सुधि-बुधि भुलाई।
नयी जिन्दगी देकर नयी शक्ति बढ़ाई।
तेरी कृपा दृष्टि पाकर हम हो गये परम।।
तुम्हें याद०

अधम से अधम प्रभु जी, तुमने हैं तारे।
अजीबो-गरीब हैं प्रभु तेरे नजारे।
सदा दिल में बैठो प्रभुजी, ये कर दो करम।।
तुम्हें याद०

जीवन हमारा प्रभुजी तुमने बनाया।
नया रूप नया ढंग देकर सजाया।
अब प्रेम से रटेंगे तेरा नाम हरदम।।
तुम्हें याद करते हैं गुरुदेव हम।।

✲✲✲

श्रीप्रभु कृपा लीला

जगदीश राय बंसल "अधम"
गोहाना मण्डी D.C.M. जि० सोनपत

गुरु चन्द्रमोहन चाले, करण तपस्या बड़ी भारी।
प्रभु रामलाल ने चिट्ठी भेजी, मानों आज्ञा हमारी।। टेक

कई दिनों से लहर उठे थी, बदीवन में जाऊँगा
सत्पथ खंड में अनुष्ठान जमा कै, परम पद को पाऊँगा
भूल जाऊँ जग के झगड़े अपना पल्ला बचाऊँगा
प्रवृत्ति मार्ग छोड़ कै निवर्ती मार्ग अपनाऊँगा
दृढ़ निश्चय कर लिया मन में बनूंगा कमण्डल धारी।। गुरु

शरीर में भभूति रमा ली लक्ष्य पै है खरा उतरना
फल फूल से क्षुधा मिटाऊँ, अन्न का है त्याग करना
तन पै मृग छाला बान्धी, जटा में बट रस झरना
सर्द गर्म सब सहन करूँगा, चाहे जीना चाहे मरना
न्यूं बोले भक्त चिरंजी लाल से प्रभु चरणों में विनय हमारी।। गुरु

कन्धे पै कम्बल डाला, आगे कदम बढ़ाया था
देव लोक में हल चल मचगी, योगी मस्ती से चलता था
लीला अद्‌भुत लीलाधर की, ऐसा रास रचाया था
दायां कदम बाहर रखा तो, डाकिया चिट्ठी लाया था
चिट्ठी पढ़ कै वापिस हो लिए जो आज्ञा गुरु तुम्हारी।। गुरु

अल्मोड़ा से चिट्ठी आई, महाप्रभु का सन्देशा है
चन्द्रमोहन जो कदम बढ़ाया, उसको पीछे हटाना है
हम तो बैठे बस्ती में, तुझे बदी बन क्यों जाना है ?

अनेक काम पड़े अधूरे, सब कुछ तुमको करना है
गुरु आज्ञा शिरोधार कै, चिट्ठी बक्से में डाली।। गुरु

लीला देख प्रभु रामलाल की, गुरु जीवड़े गदगद होए
मृग छाला तुरन्त उतारी और जल्दी-जल्दी केश धोए
पुराने वस्त्र धारण कर कै गुरु दरबार मे पेश होए
करके प्रणाम प्रभु रामलाल को नैनों से चरण धोए
फिर योग प्रचार में जुटगे गुरु जी प्रभु रामलाल सहाई।। गुरु

संवाई में पधार गुरु जी, सिद्ध गुफा का नाम दिया
लम्बे चौड़े भवन बना कै, ठरहने का इन्तजाम किया
जीवन तत्व करा कै, लाखों का उपचार किया
सिद्ध गुफा की रज चढ़ा कै, शक्ति का संचार किया
पहली दीक्षा दे लक्ष्मी नारायण को माला लम्बी बना ली।। गुरु

प्रभुरामलाल की जय बोल कै, कितनों को शरण दिया
कृष्णकान्त उमा शंकर जैसे, अनेकों को जीवन दान दिया
विधवा का पुत्र जो लाकर, योग का चमत्कार किया
अशरण को शरण दे दे कर, घर-घर मंगलाचार किया
वर्णन नहीं हो सकता गुरु का, हारे योगी मुनी ब्रह्मचारी।। गुरु

गुरु चन्द्रमोहन कोई और नहीं साक्षात् परब्रह्म हैं
जहाँ पर डम डम डमरू बाजे, कैलाशी वासी हैं
मात यशोदा की गोदी खेले, वो ही मथुरावासी हैं
श्री दासलाल की लेखनी लिखती, विष्णु के अवतारी हैं
बड़े संस्कार से मिले गुरु जी यू अधक सदा बलिहारी।। गुरु

❀❀❀

बड़े भाग्य मानुष तन पाया

—रामेश्वर खण्डेलवाल, गंगापुरसिटी

संतों की वाणी में और शास्त्रों में आता है कि मनुष्य जन्म केवल अपना कल्याण करने को मिला है। विषयों के सुख भोगने के लिये तथा स्वर्ग प्राप्ति के लिये नहीं। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है—"**बहूनां जन्मनामन्ते**"—मनुष्य जन्म सम्पूर्ण जन्मों का अन्तिम जन्म है। भगवान ने जीवन को मनुष्य शरीर देकर उसे जन्म—मरण के प्रभाव से अलग होकर अपनी प्राप्ति का पूर्ण अधिकार दिया। परन्तु यह मनुष्य भगवान को प्राप्त न करके राग के कारण फिर पुराने प्रभाव में अर्थात् जन्म—मरण के चक्कर में चला जाता है।

यह मनुष्य जन्म सम्पूर्ण जन्मों का आदि जन्म भी है और अन्तिम जन्म भी है। सम्पूर्ण जन्मों का आरम्भ मनुष्यजन्म से ही होता है। अर्थात् मनुष्य जन्म में किए हुए पाप चौरासी लाख योनियों और नरकों में भोगने पर भी समाप्त नहीं होते, बाकी ही रहते हैं, इसलिये यह सम्पूर्ण जन्मों का आदि जन्म है। मनुष्य जन्म में सम्पूर्ण जन्मों का नाश करके सम्पूर्ण वासनाओं का नाश करके अपना कल्याण कर सकते हैं, भगवान को प्राप्त कर सकते हैं, इसलिये यह सम्पूर्ण जन्मों का अन्तिम जन्म है।

भगवान ने गीता में कहा है कि जो मनुष्य अन्त समय में जिस—जिस भाव का स्मरण करते हुए शरीर छोड़ता है, उस—उस भाव को प्राप्त होता है। मनुष्य के उद्धार के लिये भगवान ने अपनी तरफ से यह अन्तिम जन्म दिया है अब इसके आगे यह नये जन्म की तैयारी कर ले। इस बात को लेकर गीता मनुष्य मात्र को परमात्मा प्राप्ति का अधिकारी मानती है और यहाँ तक भी कहती है कि वर्तमान का दुराचारी से दुराचारी पूर्व जन्म के पापों के कारण नीच योनि में जन्मा हुआ मनुष्य भी भगवान का आश्रय लेकर परमगति को प्राप्त हो सकता है। अगर मनुष्य भगवान से विमुख होकर संसार के राग में न फंसे तो भगवान के परम धाम को प्राप्त कर सकता है।

भगवान ने मनुष्य को अपना कल्याण करने की स्वतंत्रता दी है। अगर यह प्राणी उस स्वतंत्रता का दुरुपयोग न करे अर्थात् भगवान और शास्त्रों के विपरीत न चले तो वो अपना कल्याण कर सकता है। गीता में आया है कि निष्काम भाव से विधिपूर्वक अपने कर्त्तव्य

कर्म पालन किया जाय तो अनादि काल से बने हुए सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं। ज्ञान योग से मनुष्य सम्पूर्ण पापों से तर जाता है। भगवान भक्तों को सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर देते हैं। जो भगवान को अज–अनादि जानता है, वो सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार कर्मयोग, ज्ञान योग और भक्ति योग–तीनों योगों से पाप नष्ट हो जाते हैं।

मनुष्य जन्म में सतसंग मिल जाय, सद्पुरुष, सद् गुरु का सानिध्य मिल जाए तो साधक को यह समझना चाहिए कि भगवान ने विशेषता से कृपा कर दी। अब तो हमारा उद्धार होगा ही, अब आगे हमारा जन्म–मरण नहीं होगा। कारण कि अगर हमारा उद्धार नहीं होना होता, तो ऐसा मौका नहीं मिलता। परन्तु जब सद्गुरुदेव की कृपा मिल जाती है तो उनकी कृपा से हमारा उद्धार होना निश्चित है। लेकिन यही सोच कर मनुष्य को उनके बताये गये साधनों को नहीं छोड़ना चाहिए। जैसा गुरुदेव ने हमें साधन बताया उनको श्रद्धापूर्वक, लगन से करना चाहिए। उत्साहपूर्वक साधन में लगा रहना चाहिए। समय सार्थक बने, कोई समय खाली न जाय, ऐसी सावधानी हरदम रखनी चाहिये, क्योंकि जिसने इतना प्रबन्ध किया है वो आगे भी करेगा। जैसे किसी ने भोजन के लिये निमंत्रण दिया, आसन बिछा दिया, पानी का लोटा रख दिया तो भोजन की थाली भी अवश्य आयेगी। जब हमको परमात्मा ने हमारे उद्धार के साधन पैदा कर दिये। हमको गुरुदेव मिले, उनका सहारा मिला अगर हम उनके बताये मार्ग पर श्रद्धापूर्वक चलते हैं तो वे कभी हम से दूर नहीं है और ना ही हमको छोड़ने वाले हैं। अगर हमारा कल्याण होना न होता तो उस परम प्रभु ने हमको ये साधन नहीं दिये होते। भगवान ने यह शरीर दिया, उद्धार की सारी सामग्री दी तो निश्चित ही हमारा उद्धार होगा ही–ऐसा दृढ़ विश्वास करके निमित्त मात्र बनकर साधन करना चाहिए।

जिसके पूर्व जन्मों के पुण्य होते हैं, वही भगवान की तरफ चल सकता है अगर ऐसा माना जाय तो पूर्व जन्मों का पाप पुण्यों का फल तो पशु–पक्षी–कीट–पतंग आदि योनी वाले प्राणी भोगते ही हैं, फिर मनुष्य में और उन प्राणियों में क्या फर्क रहेगा ? भगवान ने जो मनुष्य जन्म दिया है वो कहाँ सार्थक होगा ? मनुष्य जन्म की महिमा तो इसी में ही कि वो भगवान का आश्रय लेकर अपने कल्याण मार्ग पर चलता रहे।

नृदेह माद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मायानुकुलेन नमस्वतेरितं पुमान भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा।।

(श्रीमद्० ११/२०/१७)

यह मनुष्य शरीर समस्त शुभ फलों की प्राप्ति का मूल है और अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी अनायास सुलभ हो गया है। इस संसार सागर से पार होने के लिये एक सुदृढ़ नौका है, जिसे गुरु रूप नाविक चलाता है और वह (भगवान) वायु रूप होकर इसे लक्ष्य की ओर बढ़ाने में सहायता देता है। इतनी सुविधा होने पर भी जो मनुष्य इस संसार सागर से पार नहीं होता वह अपनी आत्मा का हनन करने वाला अर्थात् पतन करने वाला है।

मनुष्य के पाप या पुण्य उसका जन्म मरण बार-बार योनियां बदलना इस सबके पीछे मनुष्य के मन का कारण होता है। अगर मन में वासना, कामना आदि सांसारिक झंझटों के स्थान पर परमात्मा को बसा ले तो निश्चित ही कल्याण होगा। हमको ये समझना है कि ये संसार एक माया है एक धोखा है असल तो केवल एक परमात्मा है। हम परमात्मा के अंश हैं। हमारा आदि और अन्त केवल परमात्मा है। हम वहीं से आये हैं और वहीं जाना है। मंजिल हमारी परमात्मा ही है। लेकिन रास्ते में संसार आ गया। उसमें उलझ गये। मानव तन देकर संसार में हमें भेजना जिससे हमारा उद्धार हो लेकिन हमने अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारा संसार को अपना लिया और परमात्मा को भूल गये यही कारण है हमारा नीच योनियों में जन्म लेना। अगर हम हमारे मन, बुद्धि चित्त, इन्द्रियों को परमात्मा में लगा देते तो जन्म मरण के चक्कर से छुटकारा मिल जाता लेकिन हमने हमारा पूरा जीवन मेरा-मेरा करते हुए, या फिर इन्द्रियों के विषय भोग में लिप्त होकर बिताया जिसके परिणामस्वरूप हमको दण्ड मिलता है और वो दण्ड नीच योनियाँ-गरीबी, कोढ़ी, विकलांगता आदि कई प्रकार के रूप में हमें मिलता है।

देखा जाये तो इस संसार में जो भी नजर आता है उन सब के पीछे परमात्मा ही है। लेकिन पहचानने का, जानने का, व देखने का नजरिया चाहिए। हमारी नजरों में वासुदेवः सर्वम् वाला भाव होना चाहिए। महासर्ग के आदि में एक भगवान ही अनेक रूपों में हो जाते हैं और अन्त में अर्थात् महाप्रलय में एक भगवान ही शेष रह जाते हैं। इस प्रकार जब आदि और अन्त में एक भगवान ही रहते हैं, तब बीच में दूसरा कहाँ से आया ? क्योंकि संसार की रचना करने में भगवान के पास अपने सिवाय कोई सामग्री नहीं थी, वे तो स्वयं संसार के रूप में प्रकट हुए हैं। इसलिये यह सब वासुदेव ही है।

यह जो कुछ संसार दीखता है, सब भगवान् का ही स्वरूप है। भगवान् के सिवाय इस संसार की स्वतन्त्र सत्ता भी नहीं है। अतः देखने, सुनने और समझने में जो कुछ संसार आता है, वह सबका सब भगवत् स्वरूप ही है। भगवान की आज्ञा है-

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपिन्द्रियैः
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा।।

(श्रीमद्० ११/१३/२४)

मन से वाणी से, दृष्टि से तथा इन्द्रियों से भी जो कुछ ग्रहण किया जाता है,वह सब मैं ही हूँ। मुझ से भिन्न और कुछ नहीं है। यह सिद्धान्त आप लोग विचारपूर्वक समझ लीजिये ।

भगवान की यह एक अलौकिक विलक्षणता है कि वे भूखे के लिए अन्न रूप से, प्यासे के लिए जल रूप से और विजयी के लिए शब्द, स्पर्श रूप रस और गन्ध रूप से बन कर आते हैं। वे ही मन–बुद्धि–इन्द्रियाँ बन कर आते हैं। वे ही संकल्प–विकल्प बन कर आते हैं। वे ही व्यक्ति बनकर आते हैं। परन्तु साथ ही साथ दुःख रूप से आकर मनुष्य को चेताते हैं कि अगर तुम इन वस्तुओं को भोग्य मानकर इनके भोक्ता बनोगे, तो इसके फलस्वरूप तुमको दुःख ही दुःख भोगना पड़ेगा।

परमपिता परमात्मा ने हमारे कल्याण के लिए जनम–मरण के चक्कर को छुड़ाने के लिए हमें मनुष्य बनाया हमें बुद्धि प्रदान की। हमें सद्गुरुदेव से मिलाया। गुरुदेव ने हमको साधन बताया, मुक्ति का मार्ग बताया। जिससे हमारा उद्धार हो जाए। लेकिन हम कल्याण मार्ग की ओर न जाकर पतन मार्ग की ओर जा रहे हैं। विषय सुख को अपना कर भगवत् सुख को छोड़ दिया। केवल मानव चौला ही हमारा उद्धार करने में सफल रहता है बाकी सब योनियां केवल भोग योनियाँ हैं। उनमें अपना कल्याण करने की बुद्धि नहीं होती है। जैसे जेल में कैदी केवल सजा काटने को रहता है ठीक उसी तरह मनुष्य योनि के अलावा अन्य दूसरी योनी केवल भोग (दण्ड) भोगने को बनाई है। इस तरह परमात्मा ने केवल मनुष्य को ही ये अधिकार दिया कि वो अपना कल्याण इस शरीर के रहते करले, आगे कोई मौका उसको नहीं मिलेगा।

❁❁❁

तेजोऽसि सहोऽसि बलमसि आजोऽसि देवानां धामनामसि विश्वमसि विश्वायुः।

_अर्थात्_ हे अन्न ! तुम तेज हो, तुम उत्साह हो, तुम बल हो, तुम दीप्ति हो, तुम ही चराचर विश्वरूप हो, तुम ही विश्व के जीवन हो।

गंगापुर सिटी (राज०) में सप्त दिवसीय ध्यान योग शिविर

—**संतोष शर्मा** (गंगापुर)

योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं सद्गुरुदेव अनन्त श्री योगेश्वर चन्द्रमोहन जी महाराज की करुणा कृपा से प्रति वर्ष की भाँति नृसिंह कॉलोनी स्थित महाप्रभु योगाश्रम पर सप्तदिवसीय ध्यान योग साधना का कार्यक्रम रखा गया। इस शिविर में श्री सिद्धगुफा सवाई आगरा से परम श्रद्धेय श्री दासलाल जी महाराज अपने कई गुरु भाई बहिनों के साथ पधारे। गंगापुर के ही सैनिक नगर से आदरणीय श्री राम मनोहर तिवारी जी ने शिविर व उत्सव में आकर इसकी शोभा को बढ़ाया। इस ध्यान योग शिविर का संचालन श्रद्धेय योगाचार्य श्री दासलाल जी की अध्यक्षता में हुआ। प्रातः ५ से ६ बजे तक ध्यानाभ्यास कराया जाता था। आश्रम में एक बड़े हाल में साधक साधिकायें शीत कालीन लहरों के बावजूद ५ बजे उपस्थित हो जाते। ८०–१०० की संख्या में साधक ध्यानाभ्यास का आनन्द लेते थे। तत्पश्चात् जीवन तत्व साधन, योगासन, प्राणायाम एवं नेति आदि षट्कर्म की क्रियायें कराई जाती थीं। साढ़े आठ बजे आनन्दकन्द श्री प्रभु जी की आरती होती थी। तत्पश्चात् श्री मद्भगवद् गीता का पाठ होता था।

पाठ के पश्चात् अध्याय का सार संक्षेप बताया जाता था। दोपहर बाद तीन बजे से भजन कीर्तन का क्रम चलता था। दो ढाई घण्टे संकीर्तन के पश्चात् थोड़ी–थोड़ी देर का विराम होता था। सायं सात बजे आनन्दकन्द श्री प्रभु जी की आरती होती थी। पश्चात भजनों का क्रम रहता था। बनारस से पधारे गुरु भाई श्री प्रदीप जी का गुरु भक्ति से ओतप्रोत भावपूर्व भजन वहाँ उपस्थित श्रद्धालुओं के अन्तर्मन को आह्लादित करता था। सवाई धाम से पधारे श्री विनोद नादान के भजन भी उत्कृष्ट थे। आचार्य पुरुषोत्तम शरण व्यास के भजन भी अत्युत्तम थे। गुरु तत्व की महिमा का वर्णन भजनों के द्वारा किया गया।

परम आदरणीय आचार्य जी के श्रीमुख से योग जैसे गंभीर विषय को अत्यन्त सरल भाषा में समझकर योग साधकों के अन्दर दिव्य शक्ति का स्पन्दन होने लगता था। आचार्य जी ने अपनी परम् अमृतमयी, तपोमयी वाणी में योग के सिद्धान्त को समझाते हुए कहा कि—महर्षि पतञ्जली ने अपने योग दर्शन में योग को परिभाषित करते हुए कहा है—**''योगश्चित्तवृत्ति निरोधः''** चित्त वृत्तियों का निरोध ही योग है। योग अपनी आत्मस्थिति को प्राप्त करने की विद्या है। अध्यात्म जगत में योग को आत्मविज्ञान कहा है। जब यह वृत्ति तैल धारावत चित्त

में प्रविष्ट हो जाती है तब धीरे–धीरे साधक समाधि अवस्था में आता है। आत्मा और परमात्मा की समता अवस्था का नाम समाधि है।

आचार्य जी ने कहा कि धीरे–धीरे साधक जब इस पवित्र योग मार्ग का अनुसरण करता है तो उसके चित्त में आत्म–ज्योति प्रकट होती है उसे अपने स्वरूप में ही परमात्व तत्व के दर्शन होने लगते हैं तब साधक को आत्म बोध होता है। अपने भीतर प्रकाश की अनुभूति करना और उससे जुड़ जाना ही आत्मबोध है। अभी संस्कार रूप में हम इन्द्रिय सुख भोग रहे हैं, मगर यह सुख शाश्वत न होकर क्षण भर के लिए सुख प्रदान करने वाला है यदि हम इन्द्रियों के समस्त कार्य व्यापार बंद करके आत्मा की ओर मोड़ दें तो यह शाश्वत सुख है, यही परमानन्द है। जिस सुख को हम सुख मानते हैं ये सुख कुछ समय बाद नष्ट होकर हमें दुख प्रदान करते हैं। मगर ध्यानत्व सुख है वह शाश्वत है। मनुष्य के चित्त में समाहित गुणों सत्व, रज, तम पर प्रकाश डालते हुए योगाचार्य जी ने कहा कि–ये तीनों गुण आत्मा को बाँधते हैं। योग के द्वारा साधक जब इन गुणों से परे हो जाता है, गुणातीत हो जाता है तब वह अपनी आत्मा में ही रमण करने लगता है। हमारे जन्म–जन्म के संचित कर्म हमारे चित्त में पड़े रहते हैं। मनुष्य को जाति, आयु, भोग प्रारब्ध के अनुसार ही मिला करते हैं।

प्राणायाम पर व्याख्यान करते हुए आचार्य जी ने कहा कि इस कलिकाल में प्राणायाम का अधिकारी होना मुश्किल है। प्राणायाम से प्राण सबल होते हैं। मन और प्राण जब एक विषयक हो जाते हैं तो मन की एकाग्रता बढ़ने लगती है। इसके परिणामस्वरूप मन को अपने इष्ट में विलय करने की क्रिया आसान होती है। मनकी एकाग्रता में धारणा, ध्यान समाधि विशेष महत्व रखते हैं। मन की एकाग्रता से ही योग प्रारम्भ होता है। योगी दो प्रकार से लक्ष्य की ओर जाने वाले होते हैं। एक उपाय प्रत्यय वाले तथा दूसरे भव प्रत्यय वाले। भव प्रत्यय वाले योगी वे हैं जिन्होंने कई जन्मों से योग में प्रवेश पाया हुआ है। ध्यान की ऊँची अवस्था एकाग्रावस्था को पा लिया है किन्तु निर्बीज समाधि तक नहीं पहुँचे हैं। दूसरे उपाय प्रत्यय वाले योगी क्रिया योग तथा श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि एवं प्रज्ञा द्वारा आत्म लाभ की ओर चल रहे हैं। गुरुदेव से प्राप्त मंत्र का निरन्तर मनन चिंतन करने से मन प्रकाशित हो जाता है। मन प्रकाशित होने के बाद यह बुद्धि में प्रवष्टि हो जाता है तो बुद्धि निर्मलता को प्राप्त होती है। निर्मल बुद्धि में ही परमात्मा का दिव्य प्रकाश आता है। योग की प्रथम सीढ़ी जप, ध्यान है। आत्मा का दर्शन करना तथा मोक्ष को प्राप्त करना सिद्ध गुरु की कृपा से ही संभव है। जो साधक पूर्ण श्रद्धा–भाव से युक्त होकर तीव्र संवेग से साधना परायण रहता है वही योग मार्ग में शीघ्र ही अपने लक्ष्य को पा जाया करता है।

योग के दो भाग बताए गये हैं–अन्तरंग व बहिरंग। बहिरंग योग के अन्तर्गत आसन, नेति, धोती आदि हैं तथा अन्तरंग योग में धारणा, ध्यान, समाधि का समावेश होता है। श्रीमद्गीता में वर्णित श्लोकों का व्याख्यान करते हुए उन्होंने बताया कि योग विद्या कभी नष्ट

न होने वाली विद्या है। यह जन्मों–जन्मों तक संचित रहती है। शरीर छोड़ने के पश्चात् भी योगाभ्यासी के संस्कार उसके चित्त में समाविष्ट रहते हैं और उसी के अनुसार उसके जन्म का निर्धारण होता है। इस परम आध्यात्मिक ज्ञान को प्राप्त कर लेने के उपरान्त और कुछ कर लेने की आवश्यकता नहीं रह जाती। इसलिये साधक को ध्यान के द्वारा योग के संस्कारों को दृढ़ बनाते रहना चाहिये।

इस प्रकार इस सप्त दिवसीय ध्यान योग शिविर में आचार्य जी द्वारा बताये गये परम रहस्यमय अद्भुत योग मार्ग का साधकों ने श्रवण, मनन किया। दिनांक १ जनवरी २००६ को गुरुदेव का पूजन व भण्डारे का आयोजन किया गया। शिविर में कानपुर, बनारस, दिल्ली, पानीपत, मण्डी (हिमाचल प्रदेश), दतिया (म० प्र०) हरदोई, लखनऊ आदि सुदूर स्थानों से आये योग जिज्ञासु साधकों ने भाग लिया। योग योगेश्वर महाप्रभु जी की कृपा से यह कार्यक्रम अत्यन्त ही मनोरम व भक्ति से ओत–प्रोत वातावरण में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर सभी को नये वर्ष की शुभकामनायें प्राप्त हुईं। सप्त दिवसीय इस शिविर का सम्पूर्ण आयोजन परम पूज्य प्रभु जी की कृपा से अद्भुत रहा।

❋ ❋ ❋

सिद्धयोग मासिक (पत्रिका) का विवरण

फार्म नं. 4

1. प्रकाशन का स्थान	–	श्री सिद्धगुफा, सवांई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)
2. प्रकाशन का अवधिक्रम	–	मासिक
3. मुद्रक का नाम	–	दासलाल शर्मा
राष्ट्रीयता	–	भारतीय
पता	–	श्री सिद्धगुफा सवांई, आगरा (उ.प्र.)
4. प्रकाशक का नाम	–	दासलाल शर्मा
राष्ट्रीयता	–	भारतीय
पता	–	श्री सिद्धगुफा, सवांई, आगरा (उ.प्र.)
5 सम्पादक का नाम	–	दासलाल शर्मा
6. स्वत्वाधिकारी	–	दासलाल शर्मा

मैं दासलाल शर्मा एतद् द्वारा यह घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य है।

दासलाल शर्मा

28 फरवरी 2006 – कृते, सिद्धगुफा प्रकाशन, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

"विपश्यना ध्यान विधि"

—डा० जे० पी० शर्मा,
गुरु आशीष सदन, पाँटा साहिब (हि० प्र०)

पातंजलि महाराज का प्रथम योग सूत्र है "**चित्तवृत्ति निरोधः योगः**। अर्थात् चित्त वृत्तियों को रोकने, हटाने, अवरोध करने या उनके सामने दीवार लगाने को योग कहते हैं। मन के द्वारा हर पल चित्तवृत्तियाँ बनती हैं। मन को केवल ध्यान से ही वश में किया जा सकता है। मन मस्त हाथी के समान है अतः ज्ञान रूपी अंकुश से मन बांधा जा सकता है। ध्यान मन की चेतन अवस्था होती है। इसमें अनेकों विचारों को इकट्ठा करके समस्त अनुभूतियाँ एक ही अनुभूति में देखा जाता है। ध्यान की अवस्था में सब भेद स्वतः ही समाप्त हो जाया करते हैं। सीमित संकुचित आत्मा कुछ समय के लिये परमात्मा में विलीन हो जाती है। मन हर क्षण विचारों के जाल में उलझा रहता है। स्वप्न में भी मन न मालूम कहाँ–कहाँ भटकता रहता है। निरर्थक विचारों से मन की शक्ति कमजोर होती है। अच्छे विचार मन की शक्ति को बढ़ाते रहते हैं। ध्यान के अभ्यास से मन को सशक्त किया जा सकता है। मन के निरर्थक क्रियाकलापों को नियंत्रित करके नष्ट कर देना ही श्रेयस्कर है। तामसिक तथा राजसिक वृत्तियों का नियमन करने से सात्विक वृत्तियाँ बढ़ती हैं। सभी साधकों का मानसिक स्तर एक सा नहीं होता। मानसिक स्तर तथा साधना में लगन के अनुरूप ही सफलता प्राप्त होती है।'

योग मार्ग में ध्यान की अनेकों पद्धतियाँ हैं। उनमें एक पद्धति **विपश्यना** है। सतत जागरुक होकर मन की गतिविधियों का अवलोकन ही विपश्यना कहलाता है। निरंतर अभ्यास करने पर धीरे–धीरे साधक की अर्न्तदृष्टि खुल जाती है। अपार शान्ति का अनुभव होता है। सतत् अभ्यास द्वारा निर्वाण मिल जाता है। मन की शुद्धि के लिये, कष्टों से छुटकारा पा कर तथा मन की चंचलता पर नियंत्रण करके मोक्ष प्राप्ति की जा सकती है।

ध्यान विधि

ध्यान में श्वास नियमन की महत्ता है। श्वास में वायुमंडलीय हवा का नाक द्वारा अन्दर खींचना तथा अन्दर की अपान वायु को बाहर निकालना होता है। अतः श्वास खींचने तथा बाहर निकालने में गति होती है। हवा नाक द्वारा खींचने को श्वास तथा बाहर निकालने को प्रश्वास कहा जाता है। श्वास लेने तथा छोड़ने में पेट उठता तथा बैठता है। ध्यान में पेट के उठने तथा गिरने की गति पर ध्यान दिया जाता है। जैसे–जैसे अभ्यास बढ़ता जायेगा, श्वास–प्रश्वास के आने–जाने अथवा पेट के उठने–गिरने का अभ्यास सहज होता जायेगा।

विपश्यना का अभ्यास बढ़ने से मन के भावों को ठीक–ठीक अनुभव कर सकते हैं। प्रारंभ में स्मृति तथा समाधि जब तक अपरिपक्व है मन के प्रत्येक भाव को तत्काल समझ पाना कठिन होता है। अतः मन को सुस्थिर रखते हुये श्वांस–प्रश्वांस पर दृष्टि निरंतर बनाये रखनी चाहिये अर्थात् पेट के उठने तथा गिरने पर सतत् ध्यान रखने से ही सफलता मिलती है। श्वांस–प्रश्वांस प्राकृतिक गति से ही चलनी चाहिये क्योंकि अप्राकृतिक श्वांस–प्रश्वांस की गति से शीघ्र थकावट आ जाती है। अतः साधक मंद–साधारण गति से श्वांस–प्रश्वास लेता रहे। जब हम पेट की गति पर ध्यान जमाये रहते हैं तो स्वाभाविक है कि मन में संकल्प, विचार, संस्कार तथा कल्पनाओं की भीड़ लग जाय। इन मानसिक क्रियाओं की अवहेलना नहीं की जा सकती। जैसे ही संकल्प विकल्प, विचार मन में बने तुरन्त इन्हें अवलोकित करें तो स्वतः ही ये चली जायगी–दूर हो जायेंगी। मन ही मन में इन्हें देखने का अनुभव करने मात्र से हट जायेंगी। अतः सतत जागरुकता तथा सावधानी ही इस साधना का प्राण है। मन की तरफ ज्योंही ध्यान आपका जायेगा ये मन के संकल्प–विचार सब दूर होते जायेंगे।

आप भावना में बैठे हैं तथा श्वांस के आने–जाने अथवा पेट के उठने–बैठने पर ध्यान लगाये हैं उसी समय कोई 'कल्पना' आई, तत्काल मन ही मन "कल्पना आई" "कल्पना आई" देखें। कोई विचार आया तो मन ही मन "विचार आया" "विचार आया" ध्यान करें। यदि चिन्तन आया तो मन ही मन "चिन्तन आया" "चिन्तन आया" ध्यान करें। कोई इच्छा जगी, "इच्छा जगी" "इच्छा जगी" का ध्यान करें। किसी प्रश्न की गुत्थी समझ में आये तो "समझ में आई" "समझ में आई" मन ही मन अवलोकन करें। उसमें उलझें नहीं। मैं को कभी ध्यान में न लायें। मैं विचार कर रहा हूँ, मैं कल्पना कर रहा हूँ, मैं दृश्य देख रहा हूँ। मेरी इच्छा है इत्यादि कभी भी मैं को प्रक्रिया में शामिल न होने दें। हमेशा मैं–मेरा ही योग मार्ग में बाधा उत्पन्न करते हैं। हमेशा तटस्थ होकर साधना करें। इधर–उधर मन को भटकने न दें। साधना के पथ पर दृश्य बदलते रहते हैं। कभी–कभी हरे–हरे बाग–बगीचे झूमते पेड़, कभी नाचते शोर करते मोर, कभी तेज हवा तो कभी बहते नदी–नाले इत्यादि। पर इन सबको दूर करते हुये सतत् अभ्यास करते रहें। धैर्य से अभ्यास दृढ़ होता जायेगा। अभ्यास करते–करते थक जाते हैं या कोई अंग जकड़ गया है। ऐसी दशा में "थकान हो रही है" "थकान हो रही है" मन ही मन ध्यान करें तो थकान अथवा जकड़न हट जायेगी। तुरन्त पुनः पेट की गति पर ध्यान केन्द्रित करें। कहने का भाव है कि हर अवलोकन का मन ही मन ध्यान करने के तुरन्त बाद पेट की गति उठने–गिरने पर ध्यान करते रहें। ध्यान रखें सतत अभ्यास द्वारा सर्पनाड़ी अथवा कुण्डलिनी शक्ति का जागरण हो जाता है। उस समय शरीर में गर्म गर्म पदार्थ बह रहा है, नाड़ियों में शीतल पदार्थ घूम रहा है। पसीना आ रहा है। शरीर ठंडा हो रहा है। शरीर में खारिस हो रही है इत्यादि। परन्तु इन सब के होते हुये भी इनका मन ही मन अवलोकन

करते हुये सतत् आगे अग्रसर होते जायें।

कभी–कभी समाधि में थोड़ी सी प्रगति के बाद अनुभव होता है कि असह्य पीड़ा हो रही है। लगता है दम घुट रहा है। कभी–कभी लगता है कि कोई सुई चुभो रहा है या शरीर पर कीड़े रेंग रहे हैं इत्यादि। अगर आप ध्यान करना बन्द कर देंगे तो ये सब अनुभव स्वतः ही दूर जायेंगे। परन्तु जैसे ही फिर ध्यान करेंगे तो पुनः इनका बोध होने लगेगा। अतः ये बोध न तो कष्ट हैं और न ही कोई बीमारी ही हैं। ये तो शरीर में पहिले से विद्यमान होते हैं। हम अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों में व्यस्त होते हैं, ये छोटे–छोटे दोष छिपे पड़े रहते हैं। ध्यान के समय जाग जाते हैं क्योंकि मन की शक्ति प्रबल होती है। अगर साधक ध्यान में लगा रहेगा तो ये बाधायें कभी भी बाधक नहीं बनेंगी। साधक विजयी होगा। ये बाधायें अपना प्रभाव नहीं डालेंगी।

ध्यान के प्रगाढ़ होने पर गुदगुदी का सा अनुभव होता है। कभी–कभी सुषुम्ना के अन्दर शीतल धारा के प्रवाह का अनुभव होता है। यह ध्यान की सफलता का द्योतक होता है। ध्यान में बैठने पर हल्की आवाज से भी चमत्कृत हो जायेगा। इसका कारण यह है कि अब स्पर्शानुभूति का विशेष अनुभव होगा। यदि ध्यान में बैठने पर शरीर की स्थिति बदलने की इच्छा हो तो प्रत्येक स्थिति पर मन ही मन अवलोकन करें तथा धीरे–धीरे सारी प्रक्रिया की एक–एक गतिविधि का अवलोकन करते हुये शरीर के अंगों को सुविधानुसार यथा रुचि से बदल लें। ऐसा करते हुये ध्यान अभ्यास लगातार चलता रहना चाहिये।

अभ्यास करते–करते नींद आने लगे तो "नींद आ रही है" "नींद आ रही है" यदि आँखें झपकने लगें तो "आँखें झपक रही हैं" "आँखें झपक रही हैं" ध्यान करें। ध्यान में एकाग्रता आने पर नींद अथवा झपकने की स्थिति का ध्यान करते ही नींद या झपकने की स्थिति समाप्त हो जायेगी तथा तुरन्त एक विचित्र ताजगी का अनुभव होगा। परन्तु तुरन्त ही पेट के उठने तथा बैठने की गति पर ध्यान केन्द्रित कर दें। नींद आने पर ध्यान नहीं किया जा सकता परन्तु जागने पर ध्यान अभ्यास तुरन्त आरंभ कर दें। ध्यान में अनावश्यक बातचीतों पर ध्यान नहीं देना चाहिये।

आसन तथा ध्यान प्रगाढ़ता :– आसन समतल स्वच्छ जगह एकान्त होना अनिवार्य होता है। कोलाहल भरा वातावरण तो बिल्कुल त्याज्य है। जंगल, बाग–बगीचा, नदी किनारा, मंदिर देवालय उपयुक्त स्थल माने जाते हैं। बैठने के लिये कुशा, कम्बल, जूट आसन के रूप में प्रयुक्त किये जा सकते हैं। स्नान इत्यादि करके ध्यान अच्छा होता है। ध्यान में बैठने से पूर्व वज्रासन तथा पांच मिनट शवासन करना लाभकारी रहता है। कमरे में ध्यान करना हो तो कमरा साफ सुथरा खिड़की रोशनदान वाला हो। गर्मियों में पंखे का प्रबन्ध हो। ध्यान सुखासन में करना सुखद लाभकारी होता है। ब्रह्मचारी भाई पद्मासन में बैठ सकते हैं।

मेरा अपना अनुभव है कि अंधेरे स्थान में ध्यान अच्छा लगता है। सिर–ग्रीवा तथा कमर

सीधी रखकर दोनों आँखें बन्द करके ध्यान में बैठें। श्वांस–प्रश्वांस स्वाभाविक रूप से नासिका द्वारा लेते रहें। श्वांस–प्रश्वांस के साथ–साथ पेट के उठने–बैठने पर ध्यान केन्द्रित करें। विपश्यना उन भाई–बहिनों को विशेष लाभकारी है जिनके पास गुरुमंत्र नहीं है अथवा गुरु दीक्षित नहीं हैं। गुरु दीक्षित भाई–बहिन श्वांस–प्रश्वांस के साथ मंत्र जाप कर सकते हैं पर शर्त यही है कि अपना पूरा ध्यान पेट के उठने–बैठने की गति पर केन्द्रित करते रहें। अतः एक दिन–रात के अभ्यास से ध्यान प्रगाढ़ हो जायेगा। यदि बैठने की स्थिति में हैं तो पेट के उठने, गिरने तथा अपने बैठने का मन ही मन ध्यान करते रहें। जैसे–उठा, गिरा, बैठा, उठा, गिरा, बैठा आदि। यदि आप लेटकर ध्यान कर रहे हैं तो मन ही मन ध्यान करें, उठा, गिरा, लेटा, उठा, गिरा, लेटा आदि। यदि इन तीन बिन्दुओं पर एक साथ मन केन्द्रित करने में कठिनाई अनुभव करें तो श्वास के आने, जाने या पेट के उठने, गिरने पर ही ध्यान केन्द्रित करते रहें।

ध्यान करते–करते कोई दृश्य देखने की ओर दृष्टि चली जाय तो तुरन्त ध्यान करना चाहिये "देख रहा हूँ", "देख रहा हूँ" तथा पुनः श्वांस के आने, जाने या पेट के उठने, गिरने पर ध्यान टिका देना चाहिये। यदि ध्यान में कुछ सुनाई पड़े तो "सुन रहा हूँ", "सुन रहा हूँ" का मन ही मन ध्यान करें तथा पेट की उठने–गिरने की गति पर ध्यान केन्द्रित करें। इसी तरह कुत्ते के भौंकने की, गाने की ध्वनि सुनाई दे तो २–३ बार उपरोक्त रीति से ध्यान करता रहे।

कभी अभ्यास करते रहने पर भाव उठता है कि यथेष्ट प्रगति नहीं हो रही है तथा सुस्ती सी आ जाती है। ऐसे समय सुस्ती, सुस्ती की भावना करें। इतना ही नहीं स्मृति, समाधि तथा ज्ञान में उन्नति उपलब्ध करने से पूर्व मन में इस ध्यान प्रक्रिया की सच्चाई के बारे में भी संदेह उठ सकता है। ऐसी स्थिति में मन ही मन भाव करें–संदेहमय–संदेहमय। कभी–कभी उत्तम परिणाम की आशा अपेक्षा भी होगी। ऐसे समय आशा कर रहा हूँ, आशा कर रहा हूँ की भावना करें। कभी–कभी साधना की सफलता पर हर्ष तथा प्रसन्न्ता का भाव होगा। ऐसे समय पर प्रसन्न, प्रसन्न की भावना करें। अपने मन की प्रत्येक अवस्था का अवलोकन करें तथा एक–एक का ध्यान करते रहें तथा श्वांस के आने–जाने या पेट के उठने, गिरने पर अपना ध्यान टिका दें। प्रातः जगने से रात को सोने के समय तक साधना का समय है। जब तक जागता रहे पूर्ण रूप से प्रमाद रहित रहे। किसी प्रकार की शिथिलता न आने दी जाये। साधना परिपक्व हो जाने पर अनुभव होगा कि उसे अब नींद की आवश्यकता नहीं है। रात–दिन साधना अखण्ड रूप से चलती रहेगी।

***

श्री रामलाल प्रभवे नमः　　विश्वेश्वराय नमः　　श्रीसद्गुरु परब्रह्मणे नमः

श्री सिद्धगुफा सवांई (आगरा)

का

योग महामेला

श्री सिद्धगुफा सवांई (एत्मादपुर) आगरा पर योग महामेला महाप्रभु रामलाल जी महाराज के पावन प्राकट्य दिवस चैत्र शुक्ला सप्तमी, अष्टमी तथा नवमी तदनुसार ५, ६ व ७ अप्रैल (बुध, बृहस्पति तथा शुक्रवार) को बड़े ही धूमधाम से मनाया जा रहा है। आमन्त्रण पत्र नहीं भेजे जा सकते इसलिये इस सूचना को ही आमन्त्रण मानकर उत्सव में आवें तथा सत्संग लाभ लेकर अपने आप को धन्य करें।

जय गुरुदेव जी की !

निवेदक :

समस्त आश्रमवासी ब्रह्मचारी

एवं

श्रद्धालु भक्तगण

श्री सिद्धगुफा सवांई

एत्मादपुर (आगरा)

प्रेषक कार्यालय

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

श्री/सुश्री ____________________

____

____

□□□□□□□

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामयामी।।

जैसे विभिन्न नदियों के जल जब सब ओर से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुष में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं। वही पुरुष परमशान्ति को प्राप्त होता है। भोगों को चाहने वाला नहीं।

संस्थापक–योग योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज। मुद्रक, प्रकाशक एवं सम्पादक ... के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, ... आगरा से प्रकाशित। आर. एन. आई. रजि. न. UPHIN/2004/14566.
सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) ...